* ओ३म् *

वैदिक आदर्श

अर्थात

उपदेश माला

लेखकः—

स्व० श्रीस्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

अनुवादकः—

श्री पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार

प्रकाशकः—

आर्यसमाज, शामली

(मुजफ्फरनगर)

वैदिक सम्वत, १९७२९४९०४१

प्रथमवार	विक्रमी	मूल्य
१०००	१९९७	=)

मनुमहाराज का आदेश

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

मनु-अ० २ । १६८

"जो द्विज, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, वेद का अध्ययन छोड़कर, अन्य कार्य में श्रम करता है, वह जीता हुआ ही, अपने वंशजों के साथ, शूद्रत्व को शीघ्र ही प्राप्त होता है ।"

अत: द्विजत्त्व की रक्षा करने के लिये प्रतिदिन वेद का अध्ययन और मनन करना द्विजों को अत्यावश्यक है ।

दयानंद आज्ञाः—

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
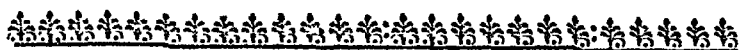
* ओ३म् *

दो शब्द

आर्यसमाज की ओर से वैदिक स्वाध्याय माला का यह चतुर्थपुष्प 'वैदिक आदर्श' के नाम से आपकी सेवा में प्रस्तुत है। स्वर्गीय श्रीस्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के 'जिज्ञासु' हृदय की कली से सन् १६६२ में इसका विकास हुआ था। पाठक देखेंगे कि आज २५ वर्ष में भी इसकी सुगन्ध वैसी ही आकर्षक है। अपने प्रतिदिन के स्वाध्याय के मंत्रों में से प्रतिसप्ताह एक को वे *अपने उर्दू 'सत्यधर्म प्रचारक' में प्रकाशित करते थे। उन्हीं में* से कुछ का यह आर्यभाषानुवाद आपकी भेंट है।

इस पर परिचय लिखते हुए स्वामीजी महाराज ने लिखा था—"वैदिक धर्मी के लिये चाहे वह किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता हो. शास्त्रों की आज्ञा है कि वह स्वाध्याय के कर्त्तव्य को कभी न भूलें।"

अंधविश्वास और अज्ञान से बचने के लिये जहां शुद्ध तर्क की आवश्यकता होती है, वहां जीवन को किसी विधायक कार्य में व्याप्त करने के लिये श्रद्धा और विश्वास की भी आवश्यकता होती है। वैदिक धर्मियों के लिये वेद की शिक्षा से बढ़कर और

क्या आदर्श हो सकता है! परन्तु हम उसका स्वाध्याय करें तभी तो। स्व० स्वामी श्रद्धानन्द जी का ईश्वर-विश्वास प्रसिद्ध है-गुरुकुल जैसे महान् परीक्षण को उन्होंने ईश्वर पर भरोसा करके ही आरम्भ किया था, इसी विश्वासके कारण उन्होंने गोरे की गोलियों के सामने सीना तान दिया था, और उसी निर्भयता ने अन्त समय कातिल की गोली खाने की सामर्थ्य दी। परन्तु उनके इस ईश्वर विश्वास का आधार वेद ही थे, यह उनके किये इस स्वाध्याय से भली भांति प्रकट होती है। उनके अक्षर-अक्षर से ईश्वर विश्वास टपकता है। ३५ वर्ष पुरानी होते हुए भी उनकी यह शैली और उनका यह स्वाध्याय बिलकुल नया है और हमारे लिये अमूल्य निधि है। इसलिये जब मुझे आर्यसमाज शामली के मन्त्री जी ने यह पुस्तक दिखाई, मैंने सहर्ष इसका आर्यभाषानुवाद करना स्वीकार कर लिया। आज बड़े २ पंडितों के भाष्य और अर्थों में भी वह ओज और दृढता नहीं दीख पड़ती, जो भक्तप्रवर श्रद्धानन्द की लेखनी में मिलती है। निश्चय ही इससे जहां वेद शिक्षा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी, वहां इसमें वर्णित शिक्षायें पाठक के जीवन को उच्च बनायेंगी।

दिल्ली]

हरिश्चन्द्र विद्यालंकार।

* ओ३म् *

वैदिक आदर्श

अर्थात्

वैदिक उपदेश माला
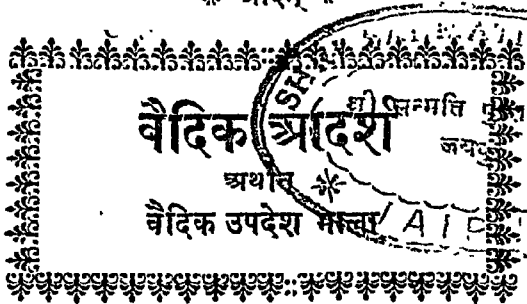
(१)

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
य० । २५ । १३ ॥

जो परमात्मा आत्म बल का देने वाला है, सारा जगत् जिस की उपासना करता है, जिसके कानून को सब विद्वान् लोग मानते हैं, जिसका आसरा ही अमृत है और उपेक्षा ही मृत्यु, है हम उस सुखस्वरूप पिता की ही उपासना करें और की नहीं ।

वेदों में मनुष्य को सावधान करते हुए निर्देश किया गया है कि परमात्मा के सिवा और किसी को अपनी मुक्ति का साधन नहीं बनाना चाहिये । उसके दरबार में कोई सिफारिश नहीं

सुनी जाती; मनुष्य के अपने कर्म ही एक मात्र सिफारशी हो सकते हैं। वह परमात्मा कैसा है? आत्म ज्ञान का देने वाला; तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक वल को वढ़ाने वाला है। सव विद्वान् उसके नियम में वन्धे हैं, कारण कि वे जानते हैं कि वही परमेश्वर एक अद्वितीय शक्ति है, और यह विस्तृत ब्रह्माण्ड उसी के सहारे ठहरा है। इस लिए उसके नियमों के विरुद्ध चलकर किसी भी अवस्था में मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। उसका आसरा मनुष्य को अमर बना देता है। कारण कि, उसकी समीपता प्राप्त किये बिना जीवात्मा को अपनी महत्ता का ज्ञान नहीं होता। इसी लिए उस परमात्मा की उपेक्षा करके परे-परे रहना 'मौत' बतलाया गया है। यहां 'सुख' शब्द का प्रयोग न कर 'अमृत' और दुःख शब्द का प्रयोग न कर 'मृत्यु' का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः 'मृत्यु' का अर्थ दुःख ही है। क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में किसी वस्तु का नाश तो होता ही नहीं है, जब जीवात्मा एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में जाता है तब इस परिवर्तन की अवस्था में जो कष्ट होता है, साधारणतः लोग इसे मृत्यु कहते हैं। बस

जब जीवात्मा को अपने अमर होने का ज्ञान हो जाता है और उसे सुखसागर पिता परमेश्वर की समीपता प्राप्त हो जाती है, तो उसको किसी भी प्रकार का क्लेश अनुभव नहीं होता। धन्य हैं वे लोग जो सारे संसार के परिवर्तनों की वास्तविकता को जान कर अपने पिता परमेश्वर की शरण लेते हैं; ऐसे ही मनुष्य शाश्वत शांति प्राप्त करते हैं।

(२)

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

य० ४० । ५ ।

वह परमात्मा सारे ब्रह्मांड को चला रहा है, वह स्वयं चलायमान नहीं होता, वह दूर है और समीप भी है; वह सबके भीतर विद्यमान है और सब के बाहर घेरा डाले हुए है।

ईश्वर के सच्चे भक्तों का कहना है कि इस सारे संसार के मालिक के सिवा और कौन इस सृष्टि के नियमों का चलाने वाला है? प्रत्येक पदार्थ को चलाने में एक ही शक्ति का हाथ दीखता है। परन्तु जो शक्ति इस सारी सृष्टि को एक ही क़ानून

पर चलाती है वह स्वयं गति नहीं करती। कारण कि गति वह वस्तु कर सकती है जो किसी एक स्थान पर विद्यमान हो और दूसरे स्थान पर विद्यमान न हो। इस लिए ईश्वर जो प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है वह कहीं भी चलायमान नहीं हो सकता। वह दूर है, वह बहुत समीप भी है; कैसी विचित्र बात है! निस्सन्देह वह परमेश्वर कोसों दूर है उन लोगों से, जो उसको पहचानने का यत्न नहीं करते; जो जड़ वस्तुओं की पूजा करते २ स्वयं जड़स्वभाव हो गये हैं; जिनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ है। दूसरी ओर वह सच्ची जगन्माता गोद में लिए हुए है उन भक्तों को, जो संसारको विनाशी समझ कर उसके मोह में नहीं फंसते, अपितु केवल परमेश्वर को ही अपना सहारा समझते हैं। परमात्मा का नाम ही हृदयेश्वर है। मनुष्य के प्राण का प्राण वही है। परन्तु मूर्ख जीवात्मा अपने सच्चे पिता को भूल कर उसकी उपेक्षा करता है और इस अन्तर में नाना प्रकार के शारीरिक व आत्मिक कष्ट भोगता रहता है। परमेश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। इसी महान् असीम शक्ति के सहारे संसार के सब काम चल रहे हैं। यही नहीं, वह परमात्मा

सारे ब्रह्मांड को ढाँपे हुए है, कारण कि उसका कहीं अन्त नहीं है।

(३)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
य० ३१। १८॥

जानता हूं मैं उस परमेश्वर को जो बड़ों से भी बड़ा है, जो सूर्य आदि को प्रकाश देने वाला है, अन्धकार से पृथक् है। उसीको जानकर मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन कर सकता है; उसकी भक्ति तथा ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है।

मसीह की मुर्दों को जिला देने की बात तो कोरी गप ही है परन्तु ऊपर लिखा वेद मंत्र निश्चय ही मरी आत्माओं में जीवन फूंकने, उनको नया जीवन प्रदान करने वाला है। इस वेद मंत्र को अपने जीवन में ढालना प्राचीन अपना परम धर्म मानते थे। उनके सारे जीवन का पुरुषार्थ केवल उस धन्य दिवस के लिये

हुआ करता था जिस दिन कि वे यह कहने के अधिकारी होते थे कि "जानता हूं मैं उस पुरुष को।" परमात्मा को पुरुष इसलिये कहा है कि वह सारे ब्रह्मांड में प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है, कोई स्थान उससे खाली नहीं है। वह बड़ों से भी बड़ा है, कारण कि वह असीम है। सूरज, चांद आदि प्रकाशमान पिंड व आकाश के टिमटिमाते तारे-सब, उसी से प्रकाश पाते हैं। वह सर्व प्रकाशक ईश्वर अंधेरे से बिलकुल पृथक् है। अर्थात् जिस हृदय में ईश्वर का सच्चा प्रकाश हो उस हृदय का अन्धकार नष्ट हो जाता है। जिस जीवात्माने उस जगद्गुरु के ज्ञान का तेज धारण कर लिया उसका अज्ञान अन्धेरा सर्वथा नष्ट हो गया। इस अमरधर्मा परमेश्वर को पहचाने, और उसको अपने जीवन में सिद्ध करे। फिर मौत का डर कैसा ? मृत्यु नाम है वियोग का अर्थात् जीवात्मा से शरीर की पृथक्ता। बस, जब ज्ञान हुआ, ईश्वर और जीव का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त होगया तो अपनी कैद से रिहाई पाने पर जीव को खुशी होगी, न कि दुःख। ईश्वर को ठीक-ठीक पहचाने बिना मुक्ति अर्थात् शाश्वतसुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता। बस, मनुष्य के लिये मुक्ति का यही एक मार्ग है, इससे दूसरा कोई नहीं है।

(४)

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति र्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूंरधराँ अवातिर न्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

ऋ० १ । ७ । १२ । ५ ॥

जो जड़ और प्राणधारी प्रजा को बनाने व पालने वाला है, जो जगत् से पहले था और सदा रहेगा, जिसके नियम में विद्वान् के लिये ही पृथ्वी का लाभ और उसका रहस्य है, जो बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर डाकुओं को नीचे गिराता है; आओ ! मित्रो ! हम सब मिलकर उस बलशाली परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह हमारा मित्र हो, शीघ्र ही कृपा करके हमारा सहायक बने ।

अल्पशक्ति जीवात्मा को कहां तक बाहरी सहायता की आवश्यकता है, थोड़ी सी विचार शक्ति रखने वाला भी इसे भली भांति जानता है । वह मनुष्य जिसका कोई सच्चा मित्र नहीं है, सचमुच सांस लेता हुआ भी मृतक समान है । जीवन में आनन्द मित्र के बिना प्राप्त नहीं हो सकता । मित्रों के बिना जीवन-संसार ऐसा सुनसान जङ्गल है जहां मानवी-बस्ती तो दूर रही, हरियाली भी उपलब्ध नहीं होती । इसीलिये सच्ची

मित्रता की प्रशंसा में संसार की प्रत्येक भाषा की पुस्तकें भरी पड़ी हैं। जब मित्रता की यहां तक प्रशंसा है, और सच्चे मित्र की आवश्यकता प्रत्येक मनुष्य अनुभव करता है तो यह भी ज्ञात होना चाहिये कि मित्रता की आवश्यकता क्यों अनुभव होती है? ज्ञानदृष्टि से सूक्ष्मदर्शी होकर देखिये तो निश्चय हो जायेगा कि मनुष्य की स्वाभाविक अल्पशक्ति ही इस आवश्यकता का वास्तविक मूल कारण है। यदि मनुष्य की शक्ति परिमित न होती तो उसे मित्र की भी आवश्यकता न होती। परन्तु इस संसार में निर्बलता किस प्राणधारी में नहीं है? बस, मनुष्यों पर से अपनी ललचाई दृष्टि हटाकर परमात्मा, दयालु सच्चे पिता की ही मित्रता हमें अपने लिये सुखदायी समझकर उसकी खोज करनी चाहिए। वह कैसे पिता हैं? उन्होंने सारे ब्रह्मांड को रचा है, उन्होंने इस चित्र-विचित्र सृष्टि को एक ऐसे नियम पर चलाया है जिसे देखकर मनुष्य की बुद्धि सदा से अचम्भे में है और सदा रहेगी। उसने सुखलाभ करने की सामग्री के रूप में पुरुषार्थ और विद्या को बनाया है। यदि ऐसे मित्र की शरण ली जाय तो फिर सुख क्यों न हो? सचमुच

मित्रता के योग्य और कौन है ? क्या अल्पशक्ति मनुष्य मित्रता के योग्य है, जो स्वयं अपनी रक्षा दूसरे की सहायता के बिना नहीं कर सकता ? कभी नहीं। जब इस संसार की ऐसी अवस्था है तो फिर आओ, प्यारे भाइयो ! उसी सच्चे मित्र की शरण लें जो हमें, निश्चयही, प्रत्येक प्रकार के दुःख से छुड़ाकर मुक्ति का शान्तिदायक आनन्द प्रदान कर सकता है; उसी सच्चे मित्र की सङ्गति प्राप्त करें, जिसके समीप पहुंचना ही परमानन्द का स्वाद चखना है । हमारी निर्वलता, अल्पज्ञता और अज्ञता हमें तब न सतायगी जब कि हम उस सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और विज्ञानमय की शरण लेंगे।

५

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्च न शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥

ऋ० १ । ७ । ८० । १५

जिस परमात्मा का और उसके बल आदि सामर्थ्य का इन्द्रियां, विद्वान्, प्राण, वायु, समुद्र आदि कोई भी थाह नहीं पा सकता, जो सब में व्यापक होकर भी सबसे पृथक् है, जो धर्म के
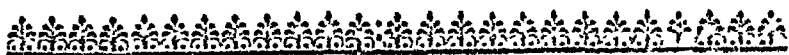
शत्रुओं बल क्षीण करके पृथ्वी और सब सुखों को धारण करता है, वह परम सामर्थ्यवान् परमात्मा हमारी रक्षा करे।

परमात्मा का पार कौन पा सकता है ? मूढ जीवात्मा जब तक अपनी परिमित शक्ति और तुच्छता से परिमित नहीं होता, उस सच्चे पिता–अनादि-अनुपम-की महिमा को नहीं समझता, तब तक वह कभी ईश्वर की तुलना मानवी शक्तियों से करता है, कभी उसके गुणों को अपने सीमित गुणों से मापने की कोशिश करता है, परन्तु जब उसके ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं, अपनी निर्बलता और अल्पज्ञता का प्रमाण उसे मिल जाता है, तब ही वह उस अनुपम की सच्ची महत्ता समझता है, अपने आपको नादान अनुभव करता है और ईश्वर के सच्चे स्वरूप का निरूपण करता है। जिसने जान लिया कि वह परमात्मा पूरी तरह जाना नहीं सकता, जिसने निश्चय कर लिया कि परम पुरुष का कोई अन्त नहीं पा सकता, सचमुच उसी ने उस अनन्त प्रभु को पहचाना। उसको प्रत्येक स्थान पर वर्तमान पाकर ही उसकी व्यापकता का प्रमाण मिलता है। इस ब्रह्मांड के अटल
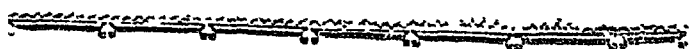
नियमों पर ध्यान देने से ही उसके गौरव और महत्व का कुछ-कुछ अनुमान हम तुच्छ जीव कर सकते हैं। उसके सहारे पृथिवी और सारे के सारे आनन्द हैं। कारण कि वह आनन्द-धर्मा है, शांति का सागर है। शांति के उस सागर में पहुंचकर पापाग्नि से झुलसे हुए हृदय शांत हो सकते हैं। आनन्द-धर्मा में ही पहुंचकर दुःखित अन्तः करण अमृत पान कर सकते हैं। ऐसे, आनन्द और सुख के धनी परमात्मा, धर्म के शत्रुओं का सदा विनाश करते हैं, उनके उत्तम नियमों के विरुद्ध चलकर कोई भी पापी दुःख से नहीं बच सकता। पापी को शिक्षा देने के लिये, उसे पाप से दूर करने के लिए दयालु पिता सदैव उसे ताड़ना देते हैं। हमें उसके नियमों में चलते हुए शत्रुओं से रक्षा के लिए उसी ईश्वर से सहायता मांगनी उचित है। पाप को दूर करने में सांसारिक, असार वस्तुओं व तुच्छ जीवात्मा से हमें पर्याप्त सहायता कहां मिल सकती है? प्राणों के प्राण परमेश्वर की अनन्त शक्ति पर विश्वास करके मनुष्य सब प्रकार के दुखों से छूट जाता है। परमपिता हम सब जीवोंमें अपनी भक्ति और प्रेम का भाव स्थापित करें।

६

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या ॥

जैसे हम लोग योगाभ्यास के विज्ञान और सामर्थ्य से सब को चेताने और सारे संसार को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के जगत रूपी ऐश्वर्य में सुख की प्राप्ति के लिये प्रकाश को धारण करें—ऐसे तुम लोग भी धारण करो।

इस वेद मंत्र से ज्ञात होता है कि सुख की प्राप्ति के दो साधन-विज्ञान और सामर्थ्य हैं। विज्ञान सामर्थ्य के विना प्राप्त नहीं हो सकता, इस लिये प्रत्येक पुरुष को पुरुषार्थ करने की सामर्थ्य प्राप्त करनी चाहिए। योगिजन अनुपम साधनों द्वारा विज्ञान लाभ करने का सामर्थ्य पाते हैं। उनको आज्ञा है कि वे अल्पशक्ति प्राणियों को भी उसी मार्ग से चलने का निर्देश करें। योग के साधनों का केवल एक ही उद्देश्य है। वह उद्देश्य है प्रकाश को धारण करना। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पता लगेगा कि प्रकाश ही जीवन है। वह देखो,

बेचारा अन्धा सड़क के किनारे चिल्ला रहा है कि 'आंखों वालो आंखें बड़ी न्यामत हैं', वह उस अनन्त ईश्वर की महिमा का कैसा अकाट्य प्रमाण दे रहा है। पर कुछ गहरा सोचिये, यदि सूर्य अपने तेज के प्रकाश से संसार का कोना-कोना प्रकाशित न करे तो आँखें बेकार हो जांय। अतएव तेज अर्थात् प्रकाश ही जीवन है। इसी प्रकार आत्मिक संसार में भी आत्मिक प्रकाश की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार भौतिक पदार्थों को देखने के लिये मनुष्य की आँख को सूर्य का प्रकाश चाहिए उसी प्रकार जीवात्मा को आत्मिक संसार की विभिन्न घटनाएं दिखलाने और उनसे उचित सम्बन्ध जोड़ उनसे उचित उपयोग लेने के लिये उस जगदात्मा, परम पुरुष, अनन्त-सूर्य के आत्मिक प्रकाश की आवश्यकता है। इसी प्रकाश को योगी लोग विज्ञान रूपी नेत्रों से देखते हैं। ईश्वर का यह निर्देश योगी जनों को ही है कि जिसप्रकाश को तुम स्वयं देखते हो, जिस द्वारा तुम स्वयं आत्मिक प्रसाद प्राप्त करते हो उसी के धारण करने के लिये मनुष्य मात्र को उभारो। धन्य हैं वे पुरुष जो परमात्मा की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपनी मूर्खता के

अन्धकार में फंसे हुए भाइयों को ज्ञानरूपी प्रकाश दिखलाते हैं। धन्य हैं वे महात्मा जो प्रकाश की महिमा को अनुभव करते हुए जगत् के पापरूपी अन्धकार का नाश करते हैं।

(७)

विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवेत्वा॥

य० ५।२१॥

"यह सारा संसार व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से उत्पन्न होकर प्रकाशित है और सब सुखों के भंडार उसी ईश्वर से विस्तार को प्राप्त होता है। यह जगत् यज्ञ का साधन है। यज्ञ के अनुष्ठान के लिये जड़ व चेतन जगत् के उत्पादयिता उस परमेश्वर का आश्रय लेना चाहिय।"

इस भाव को तो कई वेद मंत्रों में स्पष्ट कर चुके हैं कि प्रकाश ही जीवन का आधार है और प्रकाश ही ईश्वर का स्वरूप है, कारण कि प्रकाश गुण ही अनन्त चेतन का है। उसी प्रकाश से सारे जगत् की रचना है। यदि वह चेतन सूर्य को प्रकाश की

शक्ति प्रदान न करे तो सूर्य सा जड़-पिंड संसार को प्रकाश कहां से दे सकता है? और जिस प्रकार जड़ जगत् को सूर्य के द्वारा यह सूर्य का प्रकाश अनुप्राणित करता है इसी प्रकार चेतन जगत् में भी आत्मा के द्वारा प्रकाश पहुंचता है। परन्तु इस जगत् की सीमायें कहांतक हैं? यद्यपि एक ईश्वर सारे ब्रह्मांड को ढांपे हुए है फिर भी इस जगत् की रचना का अंत कौन पा सकता है, किसकी सामर्थ्य है कि अन्धेरी रातों में तारागणों की शोभा देखकर मोहित होने से बच सके? फिर भी ऐसा कोई पुरुषार्थी संसार में उत्पन्न नहीं हुआ जो इन प्रकाशमान पिंडों की गिनती कर सकता हो; क्यों? मनुष्य इतना विवश क्यों है? आश्चर्य? आश्चर्य क्यों करते हो; उठो! और विचार करो! इस संसार की रचना करने वाला कभी किसी के विचार में आया है? क्या किसीने ईश्वर को सीमा में देखा है? नहीं! नहीं!! नहीं!!! फिर कैसे सम्भव है कि कोई उसकी रचना का अंत पा सके। जब वह जगत् का स्रष्टा अनन्त है तो उसकी रचना का अन्त ढूंढने का यत्न करना अन्धेरे में हांथ-पांव चलाने से भी अधिक निरर्थक है। उसी से यह

संसार विस्तार पाता है। इस संसार में महा यज्ञ कौनसा है? निश्चय ही आत्मिक यज्ञ। इस महायज्ञ का साधन यह सारा संसार है। आत्मा की शुद्धि के लिये इस सारे जगत् को विचारो। हम अल्प जीव जगत् से उपकार कैसे ले सकते हैं? इसी तरह कि शुद्ध चेतन, दयालु परमेश्वर का आश्रय लें। अतः हे भाइयो! हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम प्रत्येक कार्य में परमात्मा का ही आश्रय लें। उसकी शरण लेकर पापरूपी दुःखों से छूट सकते हैं। उसी के दरबार में पहुंच कर आत्मिक रोगों का विनाश होता है।

(८)

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतँ स्मर॥ य० ४०। १५॥

अमृतजीवात्मा पवन के सहारे विचरता फिरेगा, यह शरीर केवल भस्म तक रहेगा। ओ३म् को अर्थ सहित विचारता हुआ अपने कर्मों का स्मरण कर।

हमारा इस मनुष्य-देह के साथ तबतक ही सम्बन्ध है जब तक कि यह राख की ढेरी न हो जाय। इसके पश्चात् जीवात्मा

का इसके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। इस वेद मंत्र में महात्माओं के अन्त समय का वर्णन है। जो पुरुष अपने जीवन को परमात्मा के अर्पण कर अपने आत्मा को शुद्ध बना लेते हैं उनके हृदय में मृत्युका भय बिलकुल स्थान नहीं पाता। यह शरीर क्षणभंगुर प्रसिद्ध है, इसलिये सदा वर्तमान नहीं रहता है। अमरजीवात्मा ही सदा वर्तमान रहता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के मन में यह बैठ जाय कि वह इस देह को असार समझे और इसलिये इसके पालने में ही न लगा रहे। अन्त में यह शरीर तो भस्म हो जायगा-तभी तक इसका जीवात्मा से सम्बन्ध है। इसलिये यहां जीवात्मा को उपदेश कि अन्त समय में ओ३म् का अर्थ समेत स्मरण करता हुआ अपने कर्मों को भी स्मरण करे। ओम् ईश्वर का निज-नाम है। इसके एक-एक अक्षर के विचार से मुक्ति की एक २ सीढी पार होती है। इसलिये इसके जाप की यह महिमा है। परन्तु साथ ही मनुष्य के अपने पिछले कर्मों का विचार भी आवश्यक है। क्योंकि वह अपने कर्मों के अनुसार ही सुख और दुःख भोगता है, कर्मों के अनुसार भावी जन्म होता है, मुक्ति भी

कर्मों के फल स्वरूप मिल सकती है। इसलिये यह आवश्यक है कि मनुष्य अन्त समय में अपने कर्मों का विचार करता हुआ ईश्वर का ध्यान करे। ऐसा करने से वह अपने कर्मों को सामने देखकर समझ सकेगा कि दयालु परमात्मा की सहायता की उसे कितनी आवश्यकता है। महात्मा लोग अपने अन्त समय में इसी वेद मन्त्र की शिक्षा के अनुसार आचरण करते हैं, इसलिये वे उस समय किंचिन्मात्र भी घबराते नहीं, ईश्वर पर पूर्ण विश्वास व भरोसा रखते हुए शान्त-चित्त होकर उसका ध्यान करते हैं। मन को सब सांसारिक विषयों से हटाकर उस एकमात्र शान्तिसागर में लीन कर देते हैं। इसी समय के लिये महात्माओं की सारी तय्यारियां होती हैं।

दयालु परमात्मा हमें असार संसार के वन्धन से मुक्त करें।

(६)

मानो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः
मा हृणानस्य मन्यवे ॥२॥

हे वरुण, जगदीश्वर ! जो अज्ञान से हमारा निरादर करे उसको मारने के लिए आप हमें कभी प्रेरित मत कीजिये तथा जो हमारे सन्मुख लज्जित हो रहा हो-उस पर क्रोध करने के लिये हमें प्रेरित मत कीजिये ।

अज्ञानी पुरुष बालक-सा होता है, वह अपने कर्त्तव्य को न जानता हुआ विद्वान् पुरुष का निरादर करता है किन्तु विद्वान वही है, ईश्वर का प्यारा वही है जो ऐसे निरादर की परवाह न करे। मूर्ख को उसकी मूर्खता पर मारने के स्थान पर उसपर प्रेम करना चाहिये। फिर जो पुरुष अपने दुष्कर्मों से ही मर रहा है उस पर क्रोध तो सर्वथा अनुचित है, ऐसे पुरुष को कंठ लगाना ही मनुष्यत्व है। वेदों में जैसी प्रशस्त प्राथना का विधान है किसी दूसरे सम्प्रदाय में ऐसी वढिया प्रार्थना नहीं मिलती। प्रार्थना का अभिप्राय परमेश्वर से वल प्राप्त करना होता है। मनुष्य के लिये मनुष्य को ही अंतिम आदर्श वताना पाप है—अंधकार में ले जाने के लिये इससे वढ़कर और कोई शिक्षा नहीं है—मनुष्य के लिये परम-पिता परमात्मा का आदर्श ही ठीक है। कारण कि यह ऐसा परिपूर्ण आदर्श है कि इसमें भूल की

सम्भावना ही नहीं है। आओ! संसार के बन्धनों में फंसे हुए भाइयो आओ!! परम-पिता को अपना आदर्श बनाओ। इस प्रकार हमको वह शुद्ध बल और पराक्रम प्राप्त होगा जिसके द्वारा संसार-रूपी भवसागर को पार कर सकेंगे।

(१०)

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ ऋ० १।१३।१०

मैं सर्वव्यापक, प्रत्येक पदार्थ की सत्ता से पहले ही वर्तमान, सर्वदुःखापहारी परमात्मा का यहां आवाहन करता हूं। हमारा केवल वही उपास्य देव है।

प्रकाश के बिना अंधकार का विनाश नहीं होता। भौतिक जगत् में ही देख लो, जब तक सूर्य या दीपक आदि का प्रकाश नहीं होता तब तक प्रत्येक वस्तु अंधेरे में ढंपी रहती है। परन्तु जिस समय सूर्य उदय होता है, उसकी तीक्ष्ण किरणों से अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसी लिये गृहपति अपने घर का अंधेरा हटाने के लिये नित सूर्य का आवाहन करता है। यही

अवस्था आत्मिक संसारकी है। मनुष्य का हृदय रूपी गृह अविद्यान्धकार से आच्छन्न जीवात्मा को विचार की आंखों से देखने नहीं देता। उस समय मनुष्य परमात्मा के ज्ञानरूपी प्रकाश के लिये उसी प्रकार व्याकुल रहता है जैसे गृहपति सूर्योदय के लिये। शुद्ध साधनों द्वारा परमात्मा का प्रकाश मिलते ही अज्ञानतिमिर दूर भाग जाता है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह परमात्मा को ही उपास्य देव समझकर उसकी ज्योति का भिक्षुक रहे। कारण कि सबको ज्योति और प्रकाश देने वाला एक मात्र वही है। ज्योतियों के ज्योति, प्रभो! अपने प्रकाशमय स्वरूप को प्रत्येक एक स्थान पर दर्शाओ।

(११)

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि। सेमं नो अध्वरं यज।

हे पूजनीय, मनुष्य आदि पदार्थों के धारण कर्ता, व पदार्थों के प्राप्त करवाने वाले प्रभु आप प्रत्येक यज्ञ में स्थित रहते हैं, आप हमारे इस ग्रहण करने योग्य यज्ञ को सिद्ध कीजिये।

सारी सृष्टि का आधार एक परमात्मा है। जड़ पदार्थ तो एक ओर रहे, चेतन-पदार्थ अर्थात् आत्मा भी इसी के सहारे स्थित है।

प्रत्येक वस्तु का प्राप्त कराने हारा भी वही परमात्मा है। क्योंकि उसकी शक्ति के बिना जीव किसी भी वस्तु से कोई काम नहीं सिद्ध कर सकता। उसी के अटल नियम के अनुसार चलकर मनुष्य हर एक पदार्थ से उपयोगी काम ले सकता है।

प्रत्येक उत्तम अनुष्ठान में उसका प्रभाव काम करता है, कारण कि वह प्रतिक्षण-प्रतिवस्तु में व्याप्त है, उसके नियम के विरुद्ध चलकर कभी कोई कार्य यथावत सिद्ध नहीं हो सकता अपितु उस के अनुसार चलकर मनुष्य प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। ऐसा कोई यज्ञ नहीं है जो उसकी सहायता से सिद्ध न हो सकता हो। निर्बल, परिमित-शक्ति जीवात्मा, परमात्मा की अद्‌भुत महिमा से चमत्कृत हो अपनी अल्प शक्ति को भूल जाता है। परम प्रभु परमात्मा अपने एक-एक कार्य में जतलाते हैं कि यद्यपि वे प्रत्येक कार्य करने में समर्थ हैं, तो भी मनुष्य को केवल उन्हीं यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये जिन्हें पूरा करने की उस में सामर्थ्य है। अपनी शक्ति से बढ़कर पग बढ़ाने वाला मनुष्य ऐसी ठोकर खाता है कि फिर नीचे से नीचे भी नहीं ठहर सकता।

पाठक गण ! जहां जीवनोद्देश्य पर ध्यान देते हुए परमात्मा के सौंदर्य्य का दृश्य देखते हो वहां अपनी निर्बलता पर भी एक दृष्टि डाल लिया करो।

(१२)

पुनन्तुमा देवजनाः पुनन्तुमनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनोहि मा ॥

हे परमात्मन् ! आप मुझको सब प्रकार से पवित्र कीजिये। ज्ञानी देव पुरुष मुझको विद्या दान से पवित्र करें। आपके ध्यान से मेरी बुद्धि पवित्र हो और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्द युक्त हों।

पवित्रता के लिये परमात्मा से सदैव प्रार्थना करनी चाहिए। इस संसार में अपवित्रता ने ऐसा घर कर लिया है, मनुष्य ने अपने अपवित्र कर्मों से संसार को ऐसा अपवित्र कर दिया है कि जब तक उस परमात्मा का सहारा न लिया जाय, जब तक उससे ज्योति न मांगी जाय तब तक पवित्रता फल नहीं सकती। इस पवित्रता की उपलब्धि के साधन, परमात्मा के नियम के
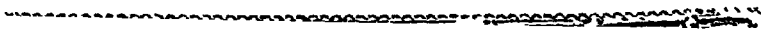
अनुसार, सत् सङ्गति और विचार ही हैं। वेद मंत्रों में भगवान् कैसी सुन्दरता से हमें उपदेश देते हैं कि विद्वानों की संगति के लिये प्रार्थना करनी चाहिए। जो स्वयं पवित्र है उसकी सङ्गति शीघ्र ही प्रत्येक प्रकार की अपवित्रता को धो डालती है। केवल इसी पर निर्भर न करके अपनी बुद्धि को भी परमात्मा की सहायता से पवित्र करना चाहिए। करण कि, जबतक बुद्धि ठीक नहीं होती तब तक मनुष्य समझ भी नहीं सकता कि कुसंग और सत्संग में क्या भेद है। इसलिये प्यारे भाइयो! सब मिलकर परस्पर सहायता करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह हमारी बुद्धि को पवित्र करे, ताकि हम उससे बल प्राप्त करके प्राणिमात्र की भलाई में अपनी भलाई समझें। हे सच्चिदानन्द शुद्ध सनातन प्रभो! आप शुद्ध स्वरूप हैं, कृपा करके हम भूले हुए सांसारिक प्राणियों को भी शुद्ध कीजिये, आप आनन्दरूप हैं, कृपा करके सारे जगत् में आनन्द को विस्तृत कीजिये। दयानिधे! हम मलिनता से भरपूर हैं, आप हमें सब प्रकार के मलों से रहित कीजिये, ताकि हम छिद्र रहित होकर आपके आत्मिक दर्शनों के अधिकारी बन सकें।

(१३)

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

जो परमात्मा विद्वानों के लिये सदा प्रकाशमान है, जो विद्वानों का परम हितकारी है। जो सब विद्वानों में आदि विद्वान् और विद्वानों के ज्ञान से प्रसिद्ध होता है, उस आनन्द स्वरूप प्रभु को हमारा नमस्कार हो।

वेदोंने बतलाया है कि परमात्मा दूर-से-दूर और निकट-से-निकट है! वह विद्वानों के लिये तो अनन्त प्रकाशशक्ति रखने वाला अतएव सदा प्रकाशित रहता है परन्तु मूर्खों के लिए कुछ भी नहीं है। जैसे सूर्य के प्रकाश की वर्तमानता में भी अंधा मनुष्य सूर्य को नहीं देख सकता; इसी प्रकार अज्ञानान्धकार से ढके अन्तःकरण वाला अनीश्वर वादी परमात्मा की निरन्तर वर्तमानता में भी उसे नहीं देख सकता, उसके प्रकाश से सुख-लाभ नहीं कर सकता। दयालु पिता सब को सूर्यवत् एक दृष्टि से देखता है, परन्तु उससे अपना हित-साधन वेही कर सकते हैं जो

उसे समझते और जानते हैं। जो मूढमति उसे नहीं जानता वह कब उसके नियमों में प्रवृत्त हो सकता है? परमात्मा का प्रत्यक्ष भी विद्वानों को ही होता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश तब तक अपना गुण प्रकाशित नहीं कर सकता जब तक कि उसके देखने वाला उसकी विद्या को न समझ सकता हो; इसी प्रकार परमात्मा की उद्दीप्त ज्योति और उसका चमत्कार तब तक मनुष्य अनुभव नहीं कर सकता जब तक कि प्रभुके नियमों के अनुसार चलकर उसके ज्ञानचक्षु न खुल जांय। इस लिये प्रिय भाइयो! हम उस परमात्मा को बारम्बार सच्चे हृदय से नमस्कार करें, जिससे कि वह हमारे ज्ञान-नेत्रों पर से अन्धकार का पर्दा हटा कर हमें अपनी पूर्ण ज्योति का दर्शन करावे। परमात्मन्! तुम धन्य हो! तुम्हारी ज्योति धन्य है !! तुम्हारा प्रकाश धन्य है !!!

(१४)

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

सत्य की ही सदा जय होती है, असत्य की नहीं। सत्य के मार्ग पर ही विद्वान् पुरुष चलते हैं। इसी सत्य के मार्ग पर

चलकर सांसरिक कामनाओं से रहित ऋषिगण परमात्मा में मुक्ति प्राप्त करते हैं—वह परमेश्वर सुखका अगाध समुद्र है।

जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा मानना ही सत्य है। इसका दूसरा अर्थ विद्या हो सकता है। ईश्वर के नियमों पर आचरण करता हुआ प्रत्येक पदार्थ को यथावत् जानकर ही मनुष्य दुःखों और कष्टों से बचा रह सकता है। इस संसार में दुःख और सुख में भीषण संघर्ष चलता रहता है। युग युगान्तर से लोग यह अनुभव करके सत्य के प्रकाश के लिये नाना प्रकार के विचार प्रकट करते रहे हैं, पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसल्मान जैनी, और पुराणी सब, सत्य और असत्य के इस काल्पनिक संघर्ष को इस या उस रूप में करते दिखलाई देते हैं। फिर ऐसे प्रत्येक संघर्ष में सत्य की विजय होती दिखाई देती है। महर्षि कहते हैं कि असत्य स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये प्रत्येक हृदय में सत्य की पैंठ बैठनी चाहिए। परन्तु बात यह है कि सत्य के इस चमत्कार को अंकित होने के लिये आवश्यक यह है कि मनुष्य की सब कामनाएं शांत हों। इन्द्रियां भोग के लिये आवश्यक हैं, परन्तु सत्य के सिद्धान्तों के अनुसार जब तक उनसे

काम न लिया जाय तव तक वे अत्यन्त दुःखी रहती हैं। इसलिये सव कामनाओं को सत्य के नियमों के अनुसार शान्त करके ही हम मुक्ति की अभिलाषा रख सकते हैं। आइये, प्रिय पाठक गण! हम सव मिलकर सत्य के राज में प्रवेश करने का प्रयत्न करें।

(१५)

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपम्बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।

एक; वशी, सारे जगत् का अन्तरात्मा, एक रूप से जो वहुत से करता है, उसको जो विद्वान् आत्मस्थ देखते हैं, उन्हीं को सुख होता है; अन्यों को नहीं।

परमात्मा एक, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान् है। उसी ने सारे ब्रह्मांड को घेरा हुआ है, कोई भी स्थान उससे खाली नहीं है, सव प्राणियों के आत्मा के भीतर भी वह व्यापक है। सूक्ष्म कारण रूपा प्रकृति से नाना रूप जगत् की रचना करने वाला वही है। एक सूक्ष्म वस्तु को लीजिये, इसकी विचित्र रचना करने

वाला। कैसा अद्भुत जगद्गुरु है! बुद्धि इधर विचार में आगे नहीं बढ़ती!! एक पदार्थ से दूसरा पदार्थ सर्वथा भिन्न है, फिर भी सारा का सारा ब्रह्मांड किस उत्तमता से एक ही नियम में बंधा हुआ है! इस विभेद और समन्वय को देखकर हमारी बुद्धि चकित रह जाती है! शोक है कि सदा साथ रहने वाले इस विचित्र कर्मा मित्र को भी अज्ञानी मनुष्य भूल बैठता है, अमृत की वर्तमानता में भी मनुष्य आत्मिक-मृत्यु में फंसकर दुःख सागर में गोते खाता है, अन्तःकरण के स्वामी को अपने भीतर ही न देखकर इधर-उधर भटकता-फिरता है। योगिजन उसे अपने अन्तःकरण में प्रत्यक्ष करते हैं और अमृत लाभ करते हैं। पाठक गण! अपने भीतर उस जगद्गुरु को अनुभव करो, और इस प्रकार शान्ति-सागर पिता के प्रेम में अनन्त सुख को प्राप्त करो।

(१६)

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।

अभ्यास तथा वैराग्य से वश में किये मन से विवेक करने

वाले मनुष्य की इन्द्रियां भी सदा उसके ऐसे ही वश में रहती है, जैसे सारथी के वश में श्रेष्ठ घोड़े।

मन की चंचलता को रोकना अत्यन्त कठिन है। इस संसार में जितने पाप और दुःख दिखलाई देते हैं उन सबका मूल कारण मनुष्य का मन ही है। मन के वेग को वश में करने वाला पुरुष ही उत्तम पुरुषार्थी है। मन की लगाम ढीली छूटते ही इन्द्रियरूपी घोड़े उछलने-कूदने लगते हैं, और मनुष्य-देह रूपी रथ संकटापन्न हो जाता है कि कहीं दुःख के गहरे गढ़ों में गिरकर चकनाचूर न हो जाय। इसलिये प्रत्येक कष्ट से बचे रहने के लिये आवश्यक है कि मन को वश में रखा जाय। परन्तु इस मन को वश में रखना कोई हंसी-खेल नहीं है। अनुभव बताता है कि जिन मनुष्य ने चक्रवर्ती राज किये, लाखों सैनिकों को कठपुतलियों के समान नचाया, अपनी थोड़ी सी गति से मनुष्यों को हिला दिया; ऐसे शक्तिशाली भी इस मन के सन्मुख हार मान गये। यह मन अत्यन्त प्रबल है। इसे रोककर मनुष्य संसार को जीत सकता है। परन्तु यह मन केवल योगाभ्यास द्वारा ही शाँत हो सकता है। इसकी

चंचलता प्रायाणाम की सांकल में ही बन्ध सकती है। नैपोलियन और, महान सिकन्दर, रावण और रिपुदमन, कितने शक्ति शाली गिने जाते थे, परन्तु जब मन को वश में रखने का समय आया तो रह गये और इसी कारण अन्त समय दुःख भोगते गये। आर्य पुरुषो! अपने सम्मुख जनक, कनाद और पतंजलि का आदर्श रखो। जब मन ही वश में नहीं है तो सांसारिक ऐश्वर्य क्या सुख देगा। आओ, हम सब मिलकर मन की शांति के लिये जगत् पिता से प्रार्थना करें!

(१७)

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥

कोई मनुष्य न प्राण से और न अपान से ही जीता है; अपितु जिस अन्तरात्मा के आश्रित ये प्राण और अपान दोनों हैं उसी भिन्न आत्मा के आश्रित मनुष्य-देह की चेतनता है।

जीवन क्या है? इसका उद्देश्य क्या है? किस के आश्रय पर मनुष्य का शरीर चलता-फिरता है? ये प्रश्न प्रत्येक मनुष्य के मन में उत्पन्न होते हैं। मूर्ख मनुष्य साँस के आने-जाने का

जीवन मानते हैं-वे यह नहीं जानते कि अग्नि ही जीवन है। अग्नि किस प्रकार उत्पन्न होती है? जब चेतनसे चेतन टक्कर खाता है, तब अग्नि प्रकट रहती है। इसलिये चेतन जीवात्मा ही जीवन का मूल कारण है। प्राण और अपान तो उस ढाँचेके कार्य हैं। प्यारे भाइयो! हम भ्रांति में पड़े हुए जीवन के कारण को भूले रहते हैं, हमने जड़-सम्बन्ध को ही जीवन माना हुआ है। अविद्या से निकलो, प्यारे मित्रो! अपने आपको पहचानो। तभी तुम अपना सम्बन्ध उस सर्वोत्तम चेतन शक्ति से समझ सकोगे, जिसकी आज्ञा के विना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जड़ जगत् में उलझने वालों के लिये आनन्द और शान्ति कहां! जब तक हम अपने स्वरूप को, अपनी चेतनता को नहीं समझते और अपने आश्रय भूत को नहीं पहचानते तब तक शान्ति कहां!

आओ, प्यारे भाइयो, हम सब मिलकर परम पिता से विनय-पूर्वक प्रार्थना करें कि वह हमारे हृदय में धर्माग्नि को प्रज्वलित करे—वह केवल उन्हीं के संसर्ग से उत्पन्न हो सकती है।

(१८)

अथाते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् ।
वोचेम ब्रह्म सानसि ॥

हे सब विद्याओं के जानने और उनको सतत धारण करने वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे हम लोग वेदों को पढ़कर उसके प्रीतिकारक ज्ञान का उपदेश करते हैं, वैसे तू भी कर ।

वेद परमात्मा की विद्या है । परमात्मा अनादि अनन्त है । न कभी उसने जन्म लिया और न कभी व मरेगा; इसलिये वेद भी न कभी उत्पन्न हुआ और न कभी वह नाश होने वाला है । गुण गुणी के साथ सदैव रहता है; इसीलिये ईश्वर का ज्ञान वेद ईश्वर के साथ सदैव रहता है । प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा, जीवात्मा के कल्याण के लिये उसका प्रकाश करता है । परमात्मा का यही नियम हमें पाठ पढाता है कि परस्पर प्रेम फैलाने वाले इस अनादि सत्य-वेद को हम अपने भाइयों के कल्याण के लिये प्रकाशित करें । प्रत्येक विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह केवल अपने आप ही ईश्वरीय ज्ञान से लाभ न उठावे अपितु इस उत्तम प्रसाद में अपने साथी भाइयों को सम्मिलित

करे। जिन ऋषियों के हृदयों में वेद विद्या का प्रकाश हुआ था उनकी भी यही शिक्षा थी। ब्रह्मा को वेद विद्या का दान देते हुए ईश्वर का यही उपदेश था कि जिस प्रकार हमने तुझको इस उत्तम विद्या का दान दिया है, तू भी मनुष्य मात्र को इसी प्रकार इस विद्या के दान से हर्षित कर। आओ, प्यारे आर्य पुरुषो! इस ईश्वरीय आज्ञा का पालन करते हुए हम सब एक दूसरे की विद्या को बढ़ावें और जब तक कि वेदध्वनि सारे भूगोल में न गूंज जाय तब तक बड़े पुरुषार्थ, अनन्त प्रेम और अदम्य उत्साह के साथ परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हुए जहां स्वयं वेद विद्या की शिक्षा को प्राप्त करें वहां अपने दूसरे भाइयों को उससे लाभ पहुंचावें।

(१६)

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।
सखा सखिभ्यः ईड्यः॥

हे परमात्मन! आप जन समाज को जल की भांति शान्ति-सुख देने वाले, सब की पवित्र कामनाओं को पूर्ण करने वाले सबके मित्र, मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य मित्र हो।

जेठ-आषाढ की तेज धूप पड़ रही है सूर्य की तरुण-तीक्ष्ण किरणें त्वचा को भेदकर शरीर के भीतर जलन पैदा कर रही हैं. अफ्रीका के सुनसान मैदान में जिसमें हरियाली दूर-दूर तक नहीं दीख पड़ती है, बेचारा यात्री चला जा रहा है, प्यास के मारे उसका कंठ सूखा जा रहा है, धूप की गर्मी से आंखें उसकी पथरा रही हैं। इसी समय अचानक कुछ हरियाली दीख पड़ती है, आशान्वित हृदय से 'यात्री उसी ओर बढ़ता है। समीप आकर देखता है कि वह वृक्षों का एक कुंज है। वह उसके भीतर प्रविष्ट होता है। यहां उसे पानी का एक कुंड-सा बना मिलता है—जल हलका ऐसा स्वच्छ कि बाल भी गिरा हुआ तल पर दिखाई देता है। थका-मांदा यात्री अपने झुलसे हृदय को शांत करने के लिये यहां बैठ जाता है। शीतल पवन के झोंकों से उसकी घबराहट दूर होती है। अंजुली में जल भरकर वह भर-पेट पीता है. प्यास शान्त होती है, हृदय शान्त होता है और वह अवर्णनीय आनन्द अनुभव करता है। इस संसार रूपी मैदान में मनुष्य की भी यही गति होती है। अपने वास्तविक निवास को भूला हुआ प्राणी नाना प्रकार के कष्ट भोगता हुआ

इस संसार की यात्रा करता है। पाप का प्रखर उत्ताप उसके हृदय को श्मशान-भूमि की भांति दग्ध कर देता है। परन्तु जब वह आत्मा रूपी उद्यान में प्रविष्ट हो परमात्मा के प्रेमामृत से लहलहाता कुंड देखता और उसका पान करता है तो पाप का उत्ताप शांत हो जाता है। परम पिता को इसीलिये जल के समान शांति-सुखदायी कहा है। जो विद्वान् जगत् के मित्र हैं, जिन्होंने प्राणधारीमात्र को एक पिता की सन्तान समझ कर उनकी सेवा का व्रत धारण किया है, वही जगत् पिता को अपना सच्चा मित्र कह सकते हैं। आओ, प्यारे, आर्य पुरुषो! अपने सच्चे पिता की सन्तान के उद्धार के लिये कटिबद्ध हो जावें; अपनी आयु, अपना बल, अपनी इन्द्रियां-अपना सर्वस्व—जो पिता का ही दिया हुआ है, उसकी सन्तान के कल्याण में लगा दें।

(२०)

वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे उरूची सोमपीतये ॥

हे वेद विद्या का प्रकाश करने वाले परमेश्वर! नाना प्रकार के प्रयोजन सिद्ध करानेहारी आपकी वेदवाणी उन्हीं विद्वानों को

प्राप्त होती है जो जानने योग्य सांसारिक पदार्थों के सम्बन्ध में विचार करने के लिये निष्कपट पुरुषार्थ करते हैं।

संसार के भक्त जो यह कहा करते हैं कि धर्म का सांसारिक व्यवहारों से कोई सम्बन्ध नहीं है, वे गूढ़ ध्यान देकर इस वेद मंत्र पर किंचित् विचार करें। वेदों का तात्पर्य वही विद्वान् पुरुष जान सकता है जो सारे सांसारिक पदार्थों का रहस्य समझ सकता है। यह जगत् उस अनन्त शक्तिमान् परमात्मा के महत्व का एक जीवित चमत्कार है। जब तक जगत् की वास्तविकता को मनुष्य नहीं समझता, जब तक पदार्थ विद्या में उत्तम योग्यता प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह वेद—ईश्वरीय विद्या—के गूढ़ सिद्धान्तों को अनुभव नहीं कर सकता! ईश्वर की श्रेष्ठ विद्या के जानने के लिये न केवल बाह्य जगत् के ही कार्यों और उनके पारस्परिक सम्बन्ध को जानने की आवश्यकता है अपितु जगत् के आभ्यन्तर की एक-एक विचित्र घटना को समझने की आवश्यकता है। इस ब्रह्मांड के एक-एक कार्य में उसकी अनन्त महिमा व्यापक है। फिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्यों के कारण को कोई तभी समझ सकता है जबकि उसकी खोज एक-एक कार्य

में की जाय। कसा ही विद्वान् और धार्मिक गुरु मिले, कैसे ही उत्तम सरल भाष्य प्राप्त हों किन्तु जब तक पुरुषार्थ पूर्वक, निष्कपट होकर मन के सब मलों को दूर करके समाधि अवस्था में विचार नहीं किया जाता तब तक ब्रह्म विद्या की प्राप्ति नहीं होती।

(२१)

ऊर्ध्व ऊपुण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भि र्विह्वयामहे।

हे विद्वन्! आप आकाशस्थ प्रकाशक सूर्य के समान हमारी रक्षा के लिये सुस्थित हैं, आप प्रकट करने वाली किरणों के समान इस सांसारिक युद्ध में विज्ञान को सेवन करने वाले हैं, इसीलिये हम आपका आवाहन करते हैं,

सूर्य अपने सारे ऐश्वर्य और तेज से आभूषित, सांसारिक प्राणियों से लाखों योजन दूर विराजमान है, अल्पज्ञ मनुष्य की उस तक पहुंच नहीं है परन्तु क्या भौतिक सूर्य अपने बल के घमंड में अपने बनाने वाले और उसकी संतान को कभी भूल सकता है? वह अपनी तीक्ष्ण किरणों को संसार भर में फैलाकर

वह सबका उपकार करता है। उस ऐश्वर्य और बल के लिये जो परमात्मा ने उसे प्रदान किया है, वह अपने कर्तार को धन्यवाद देता है और इस अनन्त जगत् में सूर्य ही अपनी किरणों के तेज से प्रत्येक वस्तु को स्थित रखता है। स्वयं दृढ़ता से स्थिर रहता है और दूसरे लोकों को भी नियम से कम या अधिक दूरी पर नहीं होने देता। इस संसार में विद्वान् पुरुष की भी यही अवस्था है। विद्या के प्रकाश में आत्मिक ज्ञान लाभ करने द्वारा तत्त्ववेत्ता पुरुष, साधारण पुरुषों से सूर्य के समान दूर—उनसे ऊपर–विराजमान है। प्रत्येक प्रकार के उत्तम गुणों से भूषित हो वह संसारी पुरुषों से ऊपर उठा रहता है। परन्तु क्या अपनी विद्या और साधन के घमंड में ऐसा तत्त्वज्ञानी साधु कभी अपने पिता जगदीश्वर की संतान को घृणा की दृष्टि से देख सकता है ? कभी नहीं। वह अपने विद्यारूपी प्रकाश की किरणों को संसार में फैला देता है, इसीलिये उसे आदित्य कहते हैं। उस में प्रकाशनशक्ति न केवल विद्यमान ही है अपितु उस प्रकाशन-शक्ति से वह सारे जगत् को प्रकाशित भी करता है।
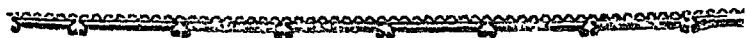
(२२)

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भि रजायथाः।

हे मनुष्य ! जो परमात्मा अज्ञानान्धकार के विनाश के लिये ज्ञान का प्रकाश और दारिद्र्य व कृपणता को दूर करने के लिये परिश्रम तथा श्रेष्ठ रूप को उत्पन्न करता है उस परमात्मा तथा उसकी आज्ञा के अनुसार वेद विद्याओं को व्यवहार में लाने वाले विद्वानों के साथ मिलकर अपने मनुष्यत्व को सिद्ध कर !

प्रत्येक प्रकार की विद्या का ज्ञान रखने वाले ही वस्तुतः विद्वान कहलाते हैं। इस लिये अधिक से अधिक ज्ञान रखने वाले, अधिक से अधिक पदार्थों के महत्त्व को समझने वाले पुरुष के समीप ही मनुष्य शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं, फिर भी अनुभव सिखलाता है कि प्रत्येक विद्वान् से शिक्षा पाकर मनुष्य वस्तुतः शिक्षित नहीं होता अर्थात् प्रत्येक आचार्य की विद्या मनुष्यमात्र और उसके लिये स्वयं भी सुखदायी नहीं होती। इसका कारण क्या है ? बात यह है कि वही विद्या फलदायिनी होती है जो ईश्वर की आज्ञा के अनुसार बरती जाय। कोरे

ज्ञान से कोई लाभ नहीं, जब तक उसका ठीक २ प्रयोग न किया जाय। इसलिये यह वेद मंत्र शिक्षा देता है कि जो विद्वान् परमात्मा की आज्ञानुसार विद्या का प्रयोग करते हैं, उनसे ही विद्याध्ययन करना उचित है, इन्हीं का सत्संग परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने का साधन है। जब तक विद्या का पूर्ण प्रकाश नहीं होता तब तक अविद्या मनुष्य को अन्ध-कूप में गिराये रहती है। जब तक पूर्ण पुरुषार्थ और उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव रूपी श्रेष्ठता नहीं उपलब्ध होती तब तक मनुष्य की आलस्य और दुष्कर्मता रूपी कुरूपता दूर नहीं होती, इसलिये मनुष्य को परमात्मा की शरण में पहुंचकर उसकी भक्ति में मन लगाना चाहिये। ज्ञान, पुरुषार्थ और सौन्दर्य को देने वाला वही है।

(२३)

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि।
तस्य व्रतान्युश्मसि ॥

हे धार्मिक विद्वान मनुष्य जैसे ब्रह्मज्ञानी ऋषि अपनी रक्षा के लिये सर्व व्यापक, सबके प्रेरक अविनाशी, समग्र ऐश्वर्य के

दाता परमेश्वर की उपासना करते हैं वैसे ही तू भी कर और जैसे, ऋषि, परमात्मा के गुणों को धारण करने का व्रत ग्रहण करते हैं वैसे तू भी कर।

इस संसार के नाना प्रकार के कार्य-पदार्थों को देख कर मनुष्य विपत्ति समय अपनी रक्षा के लिये उनकी ओर दौड़ता है परन्तु अनुभव से वह सीखता है कि इन सांसारिक पदार्थों से उसको कोई सहायता नहीं मिल सकती। जड़ पदार्थ चेतन का क्या काम कर सकता है? और चेतन जीवात्मा तो स्वयं अपनी रक्षा करने में अशक्त है, वह दूसरों की रक्षा क्या कर सकता है! व्याकुल होकर अन्त में मनुष्य महात्माओं की शरण लेता है। वे जिस आश्रय से स्वयं शान्ति लाभ कर चुके हैं उस ओर अंगुली उठाते हैं। वेद का कहना है कि कोरा उपदेश महात्माओं का भी अधूरा ही रहता है। महात्मा पुरुष वाणी से उपदेश के साथ-साथ अपनी जीवन साधारण पुरुषों के सन्मुख पेश करते हैं। परन्तु क्या वे केवल अपने जीवन को ही मनुष्य मात्र को उद्देश्य बतलाते हैं? कभी नहीं। अपितु वे अपने व्यवहार से बतलाते हैं कि परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव को आदर्श मान

कर उसके अनुसार अपने गुण, कर्म और स्वभाव को बनाना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य होना चाहिये। यही उनका सत्यव्रत है स्वयं वे जिस सत्यव्रतको वे धारण करते हैं, मनुष्य-मात्र को भी उसी के धारण करने का उपदेश करते हैं। प्रिय भाइयो! यदि सच्ची शांति लाभ करना चाहते हो तो परम दयालु पिता परमात्मा को आदर्श बनाओ, संसार के तो सब ही आदर्श वास्तविक शिक्षा के लिये अपूर्ण हैं।

(२४)

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥

व्यापक परमात्मा के उस परमपद को, सद्बुद्धि युक्त पुरुष ही ज्ञानी और सत्कर्मियों में जाकर प्राप्त होते हैं।

सबसे उत्तम पद यही है कि परमात्मा के प्रेम में मग्न होकर उसके समीप निवास किया जाय। इस पद को कौन मनुष्य प्राप्त कर सकता है? जो प्रत्येक वस्तु का पदार्थ ज्ञान रखता हो। क्योंकि जब ईश्वर, प्रेम और आनन्द के लक्षणों का ज्ञान

ही न हो तब इन की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति क्योंकर हो सकती है। परन्तु क्या केवल ज्ञान ही इस परमपद की प्राप्ति केलिये पर्याप्त है ? नहीं। इसके लिये मनुष्य को सत् कर्मों का सेवन करना चाहिये। केवल स्वयं सत्कर्मों का सेवन ही नहीं अपितु जागते हुए, सावधान रहते हुए इन सत्कर्मों का समर्थन भी इस दुर्गम पन्थ में आवश्यक है। अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के लिये न केवल यही पर्याप्त है कि उनकी प्राप्ति के मार्ग का पूरा ज्ञान हो अपितु इस ज्ञान के अनुसार आचरण भी किया जाय। और यह आचरण सोता हुआ अर्थात् एक पक्षीय नहीं होना चाहिये, केवल बाधाओं से बचना ही पर्याप्त आचरण नहीं अपितु रुकावटों से बचकर सीधे राह चले जाना कर्त्तव्य है। ऐसे सज्जन पुरुष जो अपने ज्ञान और कर्त्तव्य को एक करते हैं वे ही उस परम पद को प्राप्त करते हैं। परन्तु जब तक एक एक सूक्ष्म वस्तु को पूर्णतया अपने हृदय के नेत्रों के लिये पूर्णतया प्रकाशित न किया जाय तब तक उसकी प्राप्ति ठीक नहीं होती। इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति केलिये उस परम पद को अपने अन्तःकरण के लिये प्रकाशित करने की

आवश्यकता है। आओ जगत् पिता की संतानो! अपने ज्ञान व कर्त्तव्य को एक कर के (मिलाकर) परमपद में पहुँचने के अधिकारी बनें। इससे बढ़कर परमानन्द और कुछ भी नहीं है।

(२५)

परित्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥

हे परमात्मन्! आप वाणी से स्तुति करने योग्य हैं और स्तवनीयों में सर्वोत्तम आप ही वाणी मात्र के प्रकाशक हैं। आपके निरन्तर स्तवन से वृद्धि को प्राप्त होने वाली यह स्तुति (वाणी) आपको अनुभव करे।

सारे ब्रह्मांड में एकमात्र परमात्मा ही स्तुति योग्य है, जगत् की सहस्रों वाणियां उसकी स्तुति में लगी हैं, पत्ता-पत्ता उसका गुण-गान कर रहा है, परन्तु इस वाणी का प्रकाशक भी उसके अतिरिक्त और कोई नहीं है और जब वाणी को परमात्मा से प्रकाश मिलता है तभी वह अपना वास्तविक उद्देश्य (अर्थात् ईश्वर की स्तुति) समझने योग्य होती है। उस वाणी की स्तुति का अर्थ यही है कि उसका उचित प्रयोग किया जाय। वाणी
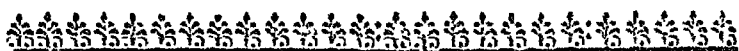
जितना अधिक प्रयोग में आती है उतनी ही उसकी उन्नति होती है और वाणी का वास्तविक उद्देश्य ईश्वर की स्तुति है इसलिये वह जितना अधिक अपना काम करती है मनुष्य उतना ही अधिक ईश्वर को समझने योग्य होता है। ईश्वर प्राप्ति की इच्छा रखनेवालो! वाणी के उद्देश्य को समझो और उसको परमात्मा की स्तुति में तत्पर करके अपने जीवन को सफल बनाओ। वाणी के प्रकाश देने वाले का जब तक उससे सम्बन्ध नहीं होता तब तक वाणी विपरीततया ईश्वर से परे ले जा सकती है।

(२६)

यमो ना गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरप भर्तवा उ। यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३अनुस्वाः ॥

विद्वानों में प्रसिद्ध जगत् को नियम में रखने वाला प्रभु हमारे मार्ग (गति) को जानता है। और उस परमात्मा के मार्ग को अतिसूक्ष्म विचार से भी कोई नहीं मिटा सकता।
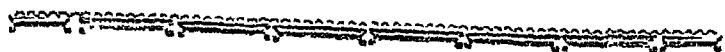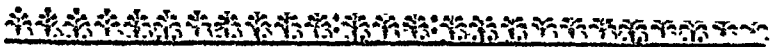
जिस मार्ग से हमारे पूर्व विद्वान् सदा से चलते आये हैं उसी मार्ग से चलने वाले प्राणी कर्मानुकूल गति को प्राप्त होते हैं।

इस संसार रूपी विचित्र नाटक का नट यह जीवात्मा ही है। अपने कर्त्तव्य दिखलाना उसका स्वाभाविक गुण है। किन्तु कर्त्तव्य करने में वह स्वतंत्र है, परमेश्वर तो साक्षिमात्र रहकर पाप-पुण्य का फल देने वाला है और नियमानुसार इस संसार चक्र को चलाने वाला है। हमारे एक-एक कर्म को वह जानता है। उसका मार्ग ऐसा स्पष्ट है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म भी विचार उसे मिटा नहीं सकता। महर्षि विद्वान् पुरुष सदैव इसी परमात्मा के पथ के अनुगामी होते रहे हैं। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो, प्रत्येक जीवात्मा अपने कर्मों का फल भोगता दिखाई देता है। इस जगत् में किया हुआ छोटे-से-छोटा कर्म भी अकारथ नहीं जाता। हिलाया हुआ हाथ भी कभी व्यर्थ नहीं होता। परन्तु हम कैसे मूर्ख हैं कि वास्तविक घटना से आंख मींचना चाहते हैं, देखते हुए भी अन्धे बनना चाहते हैं, पुरुषार्थ हीन रहकर आशा करते हैं कि हमारे पाप क्षमा कर दिये जायेंगे। किसी के कर्म का नाश उसका फल भोगे बिना नहीं हो सकता।

इसलिये उस प्रभु के नियमानुसार चलने का पुरुषार्थ करना चाहिये। ईश्वर का अटल नियम किसी के रोने या चिल्लाने से टूट नहीं सकता, प्रबन्ध के इस प्रवाह के सामने कौन ठहर सकता है ! जिसने इस लहर का सामना किया-मुंह की खाई-इसलिये ईश्वर के नियम की लहर के साथ-साथ चलने में ही छुटकारा है।

(२७)

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा।
सुश्लोक सुमङ्गल सत्य राजन्॥

हे परमात्मन् आप सुख स्वरूप और आनन्द कारक हैं। हमें भी आनन्द युक्त कीजिये। हे 'सर्वोत्तम कीर्ति युक्त, मंगल कारक और सत्य प्रकाशक प्रभो ! इसी अनन्त सुख और श्रेष्ठ विचार के लिये हमने आपकी शरण ली है।

सांसारिक सुखों की असारता को न समझता हुआ मूढ जीवात्मा आनन्द धाम की कमी अनुभव करता हुआ भी आनन्द से परे-परे रहता है किन्तु सांसारिक विषयों से आनन्द की अभिलाषा रखने वाले अनुभव के पश्चात् एक दिन अवश्य ही
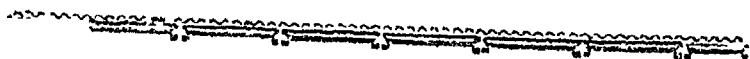
समझ लेते हैं कि सांसारिक सुख सच्चा नहीं है, इसमें दृढ़ता नाम को भी नहीं है। परन्तु शोक! फिर भी वे आनन्द की प्राप्ति के लिये सांसारिक विषयों में ही टक्कर खाते देखे जाते हैं, सांसारिक बुद्धि से सत्य को ग्रहण करने का परिश्रम करते दीख पड़ते हैं। सत्य अटल है इसलिये उसे प्राप्त करने का साधन भी अटल सत्य होना चाहिये। संसार की प्रत्येक वस्तु असार है, असार वस्तुओं से सार की आशा रखना मूर्खता नहीं तो और क्या है। जगतपिता! हमने संसार की प्रत्येक वस्तु में प्रकाश को खोजा परन्तु प्रत्येक स्थान पर अन्धेरा ही पाया। इसलिये अब दृढ़ निश्चय कर लिया है कि प्रकाश तुम्हीं से मिलता है। कामनाओं से पीड़ित, पापाग्नि से दग्ध, और व्याकुल अन्धेरे में हाथ मारते हुए अब तुम्हारी शरण आन पकड़ी है अब तुम्हीं बेड़ा पार लगाने वाले हो। ज्योतियों के ज्योति, प्रकाशों के प्रकाशक प्रभो! आपकी सेवा में बड़ी नम्रता और भक्तिभाव से प्रार्थना है कि आप हमें अपने प्रकाश का आश्रय दीजिये। स्वामिन! तुम्हारे बिना जगत् तो निविड अन्धकार वृत जङ्गल है।

(२८)

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याण तमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ
पुरुषः सोऽहमस्मि ॥

हे पुष्टिकारक, परममहर्षि, सत्यासत्य के प्रकाशक, जगत के जीवन भूत अपने तेज, को एकत्रित करो जिससे कि मैं आपके मोक्षमय स्वरूप का दर्शन कर सकूं, केवल यही मेरी प्रार्थना है।

परम महर्षि परमात्मा ही है। सारे जगत् को पुष्टि देने वाला और सबसे बढ़कर यह कि वह जगत् का जीवन है। सृष्टि का जीवन वस्तुतः प्रकाश ही है—सूर्य की तिमिर नाशक किरणें जब तक प्रकाश नहीं फैलातीं, सारा संसार एक सुनसान जंगल दीख पड़ता है। ज्यों ही सूर्य की किरणें शोभा के साथ प्रकट होती हैं त्योंही न केवल मनुष्य में अपितु वृक्ष-वनस्पतियों और पशु-पक्षियों में भी जीवन दीख पड़ने लगता है—इस प्रकार सूर्य ही इस पृथ्वी का—जड़-चेतन का जीवन है। परन्तु ब्रह्मांड पति तो सूर्य को भी प्रकाश देने वाला है। वह प्रकाशकों का भी प्रकाशक है इसलिये समग्र ब्रह्मांड का जीवन है। कारण कि

उसी से सब प्रकाशमान् पिंड प्रकाश ग्रहण करते हैं। इसी परमात्मा के प्रकाश की महिमा अनुभव करनी चाहिये। हे आत्मिक आनन्द के अभिलाषियों! मृत्यु से बचने का यत्न करने वालो! आओ प्रकाश के निधि से बल प्राप्त करें और उस प्रकाश स्वरूप को देखकर कहीं आँखें चुंधिया न जावें।

(२६)

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥

हे जगदीश्वर आप प्रजा, वाणी और कर्म इन तीनों के पति हैं और सर्वशक्तिमान् आदि गुणों से युक्त हैं। इस प्रकार आप दुष्ट प्रजा, मिथ्या वाणी और पाप कर्मों का नाश की सामर्थ्य से युक्त हैं। व्यापक और सर्व समर्थ आपकी हम इसीलिये उपासना करते हैं।

परमात्मा प्रजा, वाणी और कर्म के स्वामी हैं। सारी प्रजा उन पर आश्रित है क्योंकि प्रजा के सृजनहार वही हैं, इस प्रजा की उत्पत्ति उन्होंने अपने सम्यक् नियमों के अनुसार की है। फिर उनके नियम को तोड़ कर दुष्ट भावना से उनके बनाये जगत

को विगाड़कर उनके न्यायानुकूल दंड से कौन जीव बचा रह सकता है! वाणी को सामर्थ्य किसने दी? आकाश तो जड़ है, उसका गुण-शब्द भी जड़ होना चाहिये, परन्तु हम इस वाणी के कारनामों को देखकर आश्चर्य चकित रह जाते हैं। क्या यह महान आश्चर्य नहीं है कि एक निष्प्राण वस्तु अरबों निष्प्राणों को स्वेच्छा से जैसा चाहे नाच नचाती है! जगत् को पलटा देने वाली आयु पर शासन करने वाली वाणी ही है परन्तु ध्यान से देखिये तो कोई आश्चर्य नहीं रहता। वाणी का रचयिता वही परमात्मा है, उसी से वह बल पाती है। इसीलिये उससे बल पाने वाली वाणी को जो असत्य से दुष्ट करता है; वह ईश्वर से ताड़ना पाता है। कर्मों का स्वामी भी परमेश्वर ही है। वह साक्षिमात्र रहता हुआ नरों की तरह खेल करते हुए हमें अपने अपने कर्त्तव्य-कर्म को करता देखता है। और जब एक रात (जन्म) का यह खेल समाप्त होता है तो दूसरी रात (जन्म में) वह हमारे कर्मों के अनुसार हमें उन्नति या अवनति का अधिकारी बनाता है।

(३०)

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि
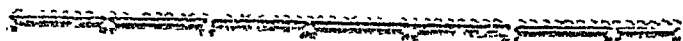
शाश्वतः। मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम्।

हे मनुष्यों! मैं (ईश्वर) सबसे पहले वर्तमान, सारे जगत् का स्वामी हूँ। मैं सनातन जगत् का कारण और सब धनों का स्वामी और दाता हूँ। मुझ को ही सब जीव, पिता की सन्तान के समान पुकारें। मैं नाना प्रकार की वनस्पतियों का विभाग भी प्रजा के पालनार्थ करता हूँ।

परमात्मा की महिमा का और क्या प्रमाण चाहते हो? कहाँ अल्पज्ञ जीव, कहाँ सर्वज्ञ जगत् पिता; कहाँ मनुष्य की तुच्छ बुद्धि कहाँ शुद्ध स्वरूप प्रभु। परन्तु उनके प्रेम की थाह कौन ले सकता है। उनकी कृपा के समुद्र की गहराई कौन नाप सकता है। इतने महान्, इतने दूर होकर भी फिर भी जिज्ञासु मनुष्य के समीप से समीप हैं और अपने एक एक नियम द्वारा पुकार पुकार कर कह रहे हैं, हमें अपने अधिकारों के लिये सावधान कर रहे हैं और सब से बड़ी कृपा, जगत् पिता की अपार दया यह है कि हमारे लिये अपने ज्ञान का प्रकाश कर रहे हैं। जगत् वर्तमान ही, उसकी विभिन्न रचना

हमारे सन्मुख हो परन्तु जब तक हम इसकी वास्तविकता को न पहचानें तब तक आनन्द कहाँ ! पिता हमें अपना महत्व स्वयं दर्शाते हैं। परन्तु हम ऐसे हृदय के अन्धे हैं कि उनको नहीं देखते। हमारे कर्तार हमें जगत् का सौन्दर्य दिखलाते हैं परन्तु हम तो आँखे ढांप लेते हैं। पिता हमें आज्ञा देते हैं कि सच्चे दिलसे मुझे बुलाओ में तुम्हारी सहायता करूंगा परन्तु हम जड़ प्रकृति के पास अपनी प्रार्थना लेजाते हैं, माता हमें प्रेममयी गोद में लेने को तैय्यार है, परन्तु हम मूढ हलाहल विष का प्याला हाथ में लेलेते हैं। आओ, धर्म प्रेमी भक्तो ! ज्ञान नेत्रों को खोलें। पिता के दर्शन करें जिससे कि क्लेश और कष्ट हमारे समीप न आने पावे।

(३१)

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥

हे परमैश्वर्यमय भगवन् ! विद्या से पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने और यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण ही आपका ठीक-ठीक वर्णन (स्तुति) कर सकते हैं, कारण कि आप ज्ञानयुक्त बुद्धि से गम्य हैं।
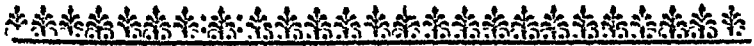
बाह्य इन्द्रियों से ईश्वर की खोज में भटकता फिरता मूर्ख मनुष्य निराश होकर पुकार उठता है कि जगत् का कर्ता कोई नहीं है। अज्ञान में ज्ञान की भावना कर अविद्यान्धकार में पड़ा हुआ जीव समझ बैठता है कि उसने ब्रह्मांड की रचना को समझ लिया है, परन्तु ईश्वर तो इन्द्रियों से जाना ही नहीं जा सकता। मूर्खों ने ब्रह्मविद्या का रहस्य ही नहीं जाना। ब्रह्मविद्या को तो रोटी कमाने की विद्या से भी सरल समझा जाता है। मूर्ख कहता है कि जब ब्रह्म सब में व्यापक है, समीप से समीप है तो ब्रह्मविद्या भी ऐसी ही सरल होनी चाहिये कि मूर्ख भी उसे ग्रहण कर लेगा निस्सन्देह, ब्रह्मविद्या को मूर्ख से मूर्ख भी ग्रहण कर सकता है। परन्तु तब ही जब कि वह उसके अनुकूल साधन भी करे, जबकि शूद्र से ब्राह्मण पदवी प्राप्त करले। साधनरूपी यज्ञ के अनुमान के विना विद्या की वास्तविकता ज्ञात नहीं होती और विद्या की वास्तविकता का ज्ञान हुए विना ईश्वर को प्राप्ति कठिन है। प्यारे, पाठको! आओ, हम सब मिलकर वेदोक्त यज्ञों का अनुष्ठान करें। ब्रह्मचर्य और सत्य, मन और वाणी, बुद्धि और उन्नति का हवन कुंड बना, इसमें आहुति के स्थान पर प्रत्येक आर्य कूद पड़े।

(३२)
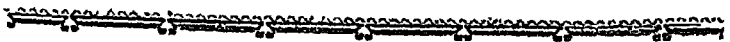
कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः ।
दधिध्वे वृक्त बर्हिषः ॥

हे सत्य कथाओं में प्रीति करने वाले, ऋत्विक् विद्वान् पुरुषों! जैसे स्नेह करने वाला पिता पुत्र को हाथों से धारण करता है वैसे तुम यज्ञ कर्म को निश्चय पूर्वक कब धारण करोगे।

ब्रह्माण्डरूपी महान् यज्ञ का रचने वाला पिता अपने अटल नियमों से यज्ञ की महिमा को दर्शा रहा है। उसका एक एक कर्म इस जगत् में विद्वानों को यज्ञ की शिक्षा देता है। सब सत्य ईश्वर से प्रकट होता है, कारण कि वह सत्य स्वरूप है। परन्तु सत्य की ओर आकर्षित करने साधारण पुरुषों की वृत्ति को सत्य की ओर प्रवृत्त करने के साधन धर्मात्मा विद्वान् पुरुष ही हैं। इसलिये यज्ञों का उत्तम अनुष्ठान उनके लिये अत्यावश्यक है। जिस प्रकार पिता पुत्र का अनुष्ठान-उसको जगत् में प्रचारित कर-उसको न केवल पालन-पोषण ही करता है। अपितु अपने हाथों के सहारे से उसे प्रत्येक कष्ट और क्लेश से बचाता है इसी प्रकार विद्वान् पुरुष यज्ञों का अनुष्ठान कर

उनका जगत् पर प्रकाश करता है। परन्तु जिस समय दुष्ट पुरुष अपनी अज्ञानता के कारण उसमें विघ्न डालने को तय्यार होते हैं, उस समय उसकी रक्षा भी वही करता है । दयानिधे ! परम कृपालो ! परमेश्वर ! उस अपने अनुग्रहसे इस जगत् में, जिसे मनुष्य की अज्ञानता ने एक भयानक जङ्गल बना दिया है। यज्ञ के धारण और पालन करने वाले विद्वानों का प्रकाश करें जिससे कि आपकी प्रजा की सत्य में रुचि दृढ़ हो।

(३३)

अग्नि मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाँ रेताँ सि जिन्वति

प्रकाश स्वरूप ईश्वर, प्रकाश मान और प्रकाश रहित दोनों प्रकार के लोकों का पालन करने वाला, सब पर विराजमान और सब दिशाओं में व्यापक होने के कारण सब का राजा है। वही परमेश्वर प्राण तथा जलों के वीर्य को पुष्ट करता है।

जगत् में प्रकाशमान और प्रकाश रहित दो प्रकार के पदार्थ हैं। योंतो पदार्थों का अन्तिम विभाग कई और गुणों के अनुसार भी किया जासकता है। परन्तु यह स्थूल विभाग है। फिर

भोक्त भोग्य ये दोनों विभाग हैं। जगत् का कुछ ऐसा चक्र है कि एक पदार्थ दूसर पदार्थ की अपेक्षा भोक्ता है परन्तु वही किसी और पदार्थ की अपेक्षा भाग्य बन जाता है। परन्तु परमात्मा किसी का भोग्य नहीं, वह अन्तिम भोक्ता है। इस लिये उस को सब के ऊपर विराजमान कहा है। इसलिये वह सबका स्वामी व राजा है। सांसारिक अल्पशक्ति राजा तो एक स्थान पर बैठकर दूसरे प्रतिनिधियों द्वारा राज्य शासन करते हैं, परन्तु उस महाराजाधिराज जगदीश्वर से कोई स्थान खाली नहीं है, उनकी चुम्बकीय शक्ति चारों ओर फैली हुई है। जल और वायु को वही पुष्टि देता है और जगत् को पुष्टि देने वाला वही है। ऐसे प्राणों के प्राण प्रभु को छोड़ कर इधर उधर भटकने वाला अल्पज्ञ जीव सचमुच बड़ा अभागी है। आओ, हम सब मिलकर जगत् के अनन्त पुष्टि कारक से पुष्टि की याचना करें।

(३४)

वाचस्पतिम्विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम। स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्व शम्भूरवसे
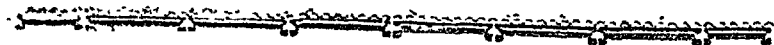
साधु कर्मा । उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥

संग्राम आदि कर्मों में हम ऐसे नेता का आवाहन करें जो वेद वाणी का रक्षक हो, जिसका वेग (गति) मन के वेग सा द्रुत हो, सब कर्मों में कुशल हो। ऐसा सुखदायक, धर्मानुसार बरतने वाला हमारी रक्षा के लिये आज हमारे सब ग्रहण करने योग्य कर्मों की पालना करे।

हमारी रक्षा कौन कर सकता है, हम किसे अपना रक्षक बनावें, रक्षक में कौन से गुण होने चाहिये इन प्रश्नों का उत्तर इस वेद मंत्र से मिलता है, संसार का एक परस्पर सहायता से ही चलता है। सभा है तो उसकी रक्षा के लिये सभापति की आवश्यकता होती है। युद्ध भूमि में सेनापति की आवश्यकता होती है, प्रजा पालन और प्रजा को सुख पहुंचाने के लिये राजा आवश्यक है और तभी यथावत् रक्षा होती है। रक्षक कैसा हो इस सम्बन्ध में वेद मंत्र बतलाता है कि वह वेदवाणी जानने वाला ही न हो अपितु उसके प्रचार में तत्पर हो। उसका वेग मन के वेग के समान हो। अर्थात् उसकी गति में आलस्य
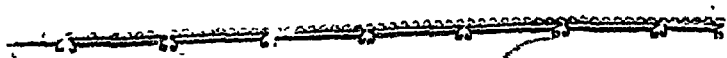
और प्रमाद का नाम तक न हो, उसके प्रत्येक व्यवहार में फुर्ती हो। फिर वह सभापति, सेनापति या राजा सब शुभ कार्यों के करने में कुशल हो, बुराई उसके मन में कभी न आवे, वह प्राणीमात्र की कुशलता चाहने वाला हो, सबको मित्र की दृष्टि से देखे। धर्म को वह जानने वाला हो, धर्म शास्त्रों पर दृढ विश्वास रखता हुआ धर्मानुसार सब की रक्षा करे। वेद मंत्र सिखलाता है कि हे मनुष्यों! ऐसे धर्मात्मा को तुम अपनी रक्षा के निमित्त नियुक्त करो और उसे कहो कि हे रक्षक! तू हमारा रक्षक बना है—अपने सब कर्त्तव्यों का भलीभांति पालन कर।

हम सब मनुष्यों को चाहिये कि किसी मनुष्य को अपना कोई काम सौंपने से पहले सब पहलुओं पर भली-भांति विचार करलें कि उसमें क्या-क्या गुण हैं, इस काम को वह निभा भी सकता है या नहीं और जब उस मनुष्य के वह काम सुपुर्द हो गया तो उसे भी अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये।

(३५)

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाधतः ॥

जैसे रक्षा करने वाला वाणों से अविद्या का नाश करने वाला बुद्धिमान पुरुष अन्तरिक्ष में और वर्तमान इस सम्पूर्ण जगत् से अग्नि का निरन्तर मंथन कर उसे ग्रहण करता है ऐसे ही तू भी जान ।

हम अग्नि के जीवन को इस भूमि पर ही काम करते हुए नहीं देखते, अपितु ब्रह्मांड भर में अग्नि की कला प्रकाशित दीख पड़ती है। अग्नि का चरित्र आश्चर्य और महान् आश्चर्यमय है! अग्नि कैसा अनुपम वज्र है कि वह भारी से भारी पर्वतों को भी हिला देता है। सहस्रों मन भार अग्नि अपने सर पर उठाकर देश-देशान्तर में पहुंचा देती है। वही अग्नि अपने नौका रूपी पात्रों से समुद्रों की यात्रा कर रही है भूमि पर उसके यान चल ही रहे हैं। सुन्दर-सुन्दर भोजन यह अग्नि ही हमें पका कर देती है। हे अग्ने! तू ही अन्धेरे से उजाला करती है। तू ही शीतकाल में झोपड़ों को गरम करके ऋषिमुनियों को आनन्दित करने वाली है। वेद-विधाता प्रभु आज्ञा देते हैं कि जैसे बुद्धिमान् पुरुष अग्नि के गुण, कर्म, स्वभाव की जांच-पड़ताल करके संसार मात्र का उपकार करता है, ऐसे ही सब मनुष्य उस अग्नि को

पहचानने का पुरुषार्थ करें । इससे जो-जो कार्य लिये जा सकते हैं, लिये जांय। जैसे की हम अग्नि को जानेंगे, पदार्थ विज्ञान दोनों हाथ फैलाकर हमें सुख पहुंचाने के लिए तय्यार होगी।

(३६)

ऋतेन मित्रा वरुणा वृता वृधा वृत स्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमा शाथे ॥

सत्यस्वरूप ब्रह्म के नियमों में बन्धे हुए, ब्रह्म ज्ञान को बढाने वाले, प्राण और अन्तःकरण ब्रह्म की प्राप्ति के निमित्त अनेक प्रकार के यज्ञरूप जगत् को व्याप्त करते हैं।

परमात्मा के नियम से बाहर कोई पत्ता भी हिल नहीं सकता। जड़-चेतन, सारा जगत् उसी के आश्रय पर चल रहा है। प्राण-उसी के सहारे मनुष्य शरीर को स्थित रख सकते हैं। अन्तःकरण ज्योतियों के ज्योति परमात्मा से ही प्रकाश पाकर जगत् को प्रकाश देने का साहस रख सकता है। ब्रह्मज्ञान की वृद्धि करते हुए, उस तक पहुंचाने का दावा करते हुए भी प्राण और अन्तःकरण, उस जगत् पिता के नियमों से बन्धे हुए हैं। यहीं प्राण जो ईश्वरीय नियमों के अनुसार चलाकर हृदय को
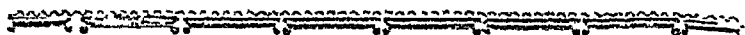
आल्हादित कर देते हैं उन नियमों से विपरीत चलने पर सारे शरीर और आत्मातर को दुःखी कर सकते हैं। वही हृदय और अन्तःकरण जो सृष्टि के नियमों के अनुसार आत्मा को पवित्रता अर्पण करने वाला है, नियम-विरुद्ध चलने पर आत्मा को श्मशान तुल्य बना देता है। अतः आओ, हे भाइयो! हार्दिक प्रेम से परब्रह्म का सहयोग प्राप्त करें।

(३७)

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।

जिस परमात्मा के महत्व का वर्णन वर्फ से ढके ऊंचे पर्वत साक्षात् कर रहे हैं, जलों के भंडार समुद्र जिसकी अद्भुत लीला को दरसाते हैं और ये फैली दिशा-विदिशायें अनन्त इशारों से जिसके तेज को बतला रही हैं, उस सुखस्वरूप व परमात्मा की हवन सामग्री से उपासना करो।

इस पवित्र वेद मन्त्र में जगत् पिता परमात्मा ने मनुष्य को आस्तिकता का बहुत सरल और स्वच्छ मार्ग बतलाया है। इस मार्ग पर चलने वाले फिर नहीं भटकते। वस्तुयें उस परमे-

श्वर की कृति के सच्चे चित्र हैं। मनमोहक, उसका यह चमत्कार तीन स्थानों पर स्वभावतः दृष्टि गोचर होता है। यह पथभ्रष्ट यात्रियों के लिये दिग्दर्शक तारे का काम देते हैं। ये तीन स्थान पर्वत, समुद्र और वन हैं। इन्हीं तीन सुहावने और मनमोहक स्थान को ही परमेश्वर की प्रार्थना के योग्य स्थान बतलाया गया है। किसी पर्वत और विशेषतः किसी हिमाच्छादित पर्वत पर चढ़कर मनुष्य अपना सारा अहंकार भूल बैठता है। वह अनुभव करता है कि इस विशालकाय पर्वत के सन्मुख मैं तो एक तुच्छ सी वस्तु हूं, इसका एक छोटे से छोटा टुकड़ा भी मेरे सारे शरीर को चकनाचूर कर सकता है। समुद्रों और वनों को देखकर भी मनुष्यका यही हाल होता है, उसकाहृदय इनकी विशालता को देखकर स्तम्भित रह जाता है। इस सन्नाटे में उस प्रभु की अपार शक्ति का दृश्य आंखों के सामने नाचने लगता है उसका विराट दर्शन होने लगता है। आइये, पाठकगण हम प्रति दिन प्रार्थना के समय इस अवर्णनीय आनन्द देने वाले दृश्य का अनुभव किया करें।
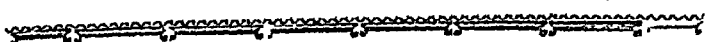
(३८)

सर्वे अस्मिन् देवा एक वृतो भवन्ति ॥
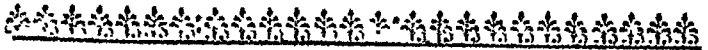
उसी में सब देव अर्थात् प्रकाशमान् पदार्थ एक वृत (केन्द्रित) होते हैं।

सृष्टि के नियम परस्पर कैसे भिन्न और विचित्र प्रतीत होते हैं। स्थूल दृष्टि पुरुष कब समझ सकता है कि जिस नियम से प्रेरित होकर सूर्य अपनी परिधि में और पृथिवी, चन्द्र एवं अन्य नक्षत्र एक दूसर के चारों ओर तथा सब के सब फिर सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं, उसी नियम से बंधे हुए असंख्य जल इस पृथ्वी पर से सूर्य की किरणों द्वारा खिंचे चले जाते हैं और फिर शुचि एवं पवित्र होकर उसी नियम के दास बने हुए घनश्याम मेघों का रुप धारण कर अपने कृष्ण कृति आतंक से.... ....के हृदयों को भयभीत करते हैं! पदार्थ विज्ञान आरम्भ करते समय आरम्भ में विद्यार्थी स्थूल दृष्टि से तो यही देखता है कि नाना शक्तियां एक दूसरे से पृथक् काम कर रही हैं परन्तु ज्यों ज्यों वह तत्त्वदर्शी होता चला जाता है, त्यों त्यों उसकी इन विभिन्न शक्तियों में एक सूत्रता दीख पड़ने लगती है वह देखता है कि माला के विभिन्न मणके जिस प्रकार एक धागे में बंधे हुए माला कहलाते हैं यही हाल इन शक्तियों का है। उस समय
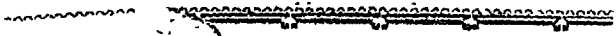
अंधविश्वास दूर हो जाता है हृदय में सच्ची खोज आरम्भ हो जाती है। यह जिज्ञासु संसार के सब पदार्थ को किरण रूप देखता हुआ किरणों के केन्द्र आत्मिक सूर्य की ओर चल पड़ता है, अन्त में वह देखता है कि इसी केन्द्र में सब एकीभूत हो रहे हैं। धन्य है, वह पदार्थ विज्ञान, जिसकी सहायता से मनुष्य पदार्थ का महत्व समझता हुआ इन सब के एकभूत होने के स्थान आत्मिक केन्द्र परमात्मा को अनुभव करने की ओर प्रवृत्त होता है।

(३९)

सत्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्रतिरेह देव। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीं उत द्यौः ॥

हे सब लोगों की कामना के योग्य जीवन और ऐश्वर्य को देने वाले जगदीश्वर आपके उत्पन्न किये हुए प्राण, अपान एवं जल, भूमि, विद्युत आदि पदार्थ हैं। वे हमारी उन्नति के निमित्त

हों और उत्तम ऐश्वर्य पहुंचाने वाले हों। इस कार्य जंगत् से हमें तो वह ज्ञान मिले जिनके कारण हम दुःखों से मुक्त रहें।

जिस परमेश्वर ने पंच विध प्राण को उत्पन्न किया है, जिसने भूमि, अंतरिक्ष तथा सब प्रकार के जलों को हमारे उपयोग के लिए रचा है, जिसकी कृपा से ही ये सब उत्पन्न पदार्थ हमारे लिये सुखदायी हो सकते हैं, हम अपने पुरुषार्थ से अपना जीवन उसी परमेश्वर के नियमों के अनुसार चलावें। परमात्मा हमें उपदेश करते हैं कि हम जगत् को ही परमानन्द का हेतु न समझें। कारण कि इसमें तो जितना हम फंसते हैं उतना ही दुःख-जंजाल हमें घेरता दीख पड़ता है-इससे तो दुःखों का छुटकारा नहीं हो सकता। उसका सीधा उपाय यही है कि हम जगत् के पदार्थों के पीछे भागकर उसके गुलाम न बनें अपितु परमात्मा के नियमों के अनुसार चलते हुए उस जगत् के पदार्थों को अपना गुलाम बनालें। परमेश्वर! हमें सुमति दीजिये कि हम आपके उत्पन्न किये इस जगत् से यह लाभ उठा सकें।

(४०)

दिवश्चत्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् । राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥

हे वेदज्ञान के उत्पत्ति स्थान. सब में प्राप्त (व्याप्त) जगदीश्वर ! आपका महागुण युक्त प्रभाव (तेज) बड़े २ प्रकाशकों से भी अधिक है आप मनुष्य तथा मनुष्य सम्बन्धी प्रजा के भी प्रकाशमान अधीश हैं। जिस सेवा को विद्वान् पुरुष (आत्मिक) युद्ध द्वारा प्राप्त करते हैं, उसे प्राप्त कराने हारे आप ही हैं।

जिससे वेद का प्रकाश होता है, उससे बढ़ कर या उसके तुल्य भी प्रकाशक कौन हो सकता है ! वह शुद्ध ब्रह्म न केवल जड़-वस्तुओं को ही प्रकाश देकर चलायमान कर रहा और उनके द्वारा शेष संसार को प्रकाश पहुंचा रहा है, अपितु, चेतन जीवात्मा को भी ज्ञानरूपी प्रकाश से प्रकाशित करने वाला, आत्मिक विद्युत द्वारा विद्योतमान करने वाला वही है। उसकी सेवा में

उपस्थित होना, उसकी आज्ञा के चक्र में विचरना ही आनन्द का उत्तम आदर्श है । परन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये देवासुर संग्राम करना आवश्यक है। देवासुर संग्राम में विजय प्राप्त करने वाले ही देव अर्थात् अमर होते हैं।

(४१)

एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहु बृहस्पतये ब्रह्मणे ।
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिन्तेन मामव ॥

हे सब दिव्य गुणों के दानी एवं समग्र ऐश्वर्य के विधाता, प्रभो! वेदवाणी की रक्षा करने वाले विद्वान् ब्राह्मण आपके नियमों के अनुसार रचित जिस यज्ञ के सहारे उन्नति के शिखर पर चढते हैं उसी यज्ञ की, हे परमात्मन्! आप रक्षा कीजिये, उसके अनुष्ठान से विद्या धर्म का जो प्रकाश होता हैं उसके साथ हमारी रक्षा कीजिये।

यज्ञ की रक्षा सदैव जगदीश्वर करते हैं। उनके रचे ब्रह्मांड में निरन्तर यज्ञ ही यज्ञ हो रहा है। अंतरिक्षरूपी हवनकुण्ड में
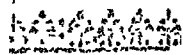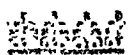
सूर्यरूपी अग्नि दिनरात ज्वलित रहती है। इससे मनुष्यों को शिक्षा लेनी चाहिये। इ आदर्श को सन्मुख देखकर ब्रह्मचर्य आदि नाना यज्ञों में हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिये। यज्ञ ही उन्नति का मूल है और उन्नति ही ानुष्य जीवन की सफलता की कुंजी है। वेद वक्ता ब्राह्मण ह यज्ञ की रक्षा वेदों की सहायता से करके आत्मिक उन्नति कर हैं। बस ईश्वर से प्रार्थना हो तो यह कि हमारे अनुष्ठित यज्ञों वह रक्षा करे। प्रार्थना इसलिये कि हमें ध्यान रहे कि इसमें ई कमी न रहने पावे या कोई मलिनता न घुसने पावे। हम: अनुष्ठान में हमारी मलिनता के कारण नाना विघ्न पड़ने की : आवनो है। इन विघ्नों को दूर रखने के लिये भगवान् की प्रार्थना से बल प्राप्त करना चाहिये। फिर यज्ञों के अनुष्ठान से विद्या और धर्म का जो प्रकाश होता है उसको आत्मा में लीन करने और उसकी रक्षा करने की शक्ति भी इस अल्पशक्ति जीव में नहीं है। आओ, सज्जन पुरुषों! हम सरलभाव और विनयपूर्वक उस प्रभु से प्रार्थना करें कि वह अनन्त सामर्थ्य युक्त यज्ञों और उनके अनुष्ठान कर्ताओं की रक्षा करे।

(४२)

वीति होत्रन्त्वा कवे द्युमन्तँ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥

हे सर्वज्ञ, ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर। आप परस्पर मित्र भाव से रहने वालों को अनन्त सुख देने वाले हैं, ऐसे अग्नि होत्र आदि यज्ञों को विदित कराने वाले आपको हम प्रकाशित करें।

सम अवस्था में रहना ही मित्र भाव से रहना कहलाता है। सम-अवस्था भी दो प्रकार से होती है—एक का सम्बन्ध मनुष्य के आभ्यन्तर जीवन से है, दूसरी का बाह्य जीवन से है। जब तक आभ्यन्तर जीवन में मनुष्य सम-भावापन्न नहीं हो जाता उसकी बाह्य चेष्टाओं (बाह्य जीवन) में समता नहीं आ सकती। आभ्यन्तर जीवन में विशेष साधनों द्वारा ही समभाव उत्पन्न हो सकता है—यह इस वेदमंत्र में दर्शाया गया है—इसी भाव को संक्षेपतः ईश्वर को प्रकाशित करना कहा गया है। पर यह क्या नास्तिकता! ईश्वर तो स्वयं प्रकाश स्वरूप है, उसको कौन

मनुष्य प्रकाशित कर सकता है ! ठीक है, निश्चय ही वह स्वयं प्रकाशरूप है, परन्तु अंधकारावृत हृदय में उसका प्रकाश करने के लिये यत्न की आवश्यकता होती है अंधकार का पर्दा हटाना पड़ता है। जिस मनुष्य के अन्तःकरण में ज्योतिर्मय के तेज से अंधकार का नाश हो जाता है, उस मनुष्य के आभ्यन्तर जीवन में समावस्था उत्पन्न हो जाती है। और फिर इस आभ्यन्तर जीवन में समावस्था उत्पन्न होने से पुरुषार्थ की इति श्री नहीं होती—इतने से ही जीव कृतार्थ नहीं हो जाता। जहां चारों ओर हाहाकार मचा हुआ हो, स्वजाति-बन्धु अविद्यान्धकार और क्लेश से पीडित हों, वहां शाश्वत शान्ति कहां ! बस, आभ्यन्तर शुद्धि के पश्चात् मनुष्य को परोपकार में लगना आवश्यक है, जिस ज्योति से अपना हृदय शुद्ध और निर्मल हुआ है मनुष्य मात्र के सन्मुख उस ज्योति की महिमा बखान करनी चाहिये। इसी प्रकार मनुष्य जन्म सफल होता है मुक्ति का अंतिम साधन यही है।

(४२)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आमर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यो रास्वेयत्सोमाभूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥

हे ऐश्वर्य के देने वाले जगदीश्वर ! आप मनुष्य के सत्य, धर्म, आचरण की रक्षा करने वाले हैं, यज्ञों में स्तुति करने योग्य हैं, धन के दाता हैं, प्राप्त हुए आप हमें धन दीजिये और सब सुखों से पुष्ट कीजिये ।

धर्माचरण की रक्षा करने वाले जगदीश्वर ही हैं जिन्होंने तृण से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सारे जगत् की रचना की है, उन्हीं की स्तुति करनी उचित है, उसी की महिमा का प्रचार करना मनुष्य का सच्चा उद्देश्य है—प्रत्येक यज्ञ का विधान करने वाले एक मात्र जगदीश्वर हैं । वे व्रतों के पति हैं, इस लिये सत्यव्रत की प्रतिज्ञा करने वाले के एक मात्र आश्रय हैं । उनके गुणों का मनन करने से मनुष्य में धर्माचरण का प्रवेश होता है ।

उनकी स्तुति से क्या लाभ है ? यह कि आत्मिक, मानसिक और शारीरिक प्रत्येक प्रकार का धन उन्हीं के संसर्ग से प्राप्त होता है और ऐसे उत्तम धन की प्राप्ति से अवश्य ही उत्तम सुखों की वृद्धि हो सकती है। इसलिये हे मनुष्य ! परमात्मा के गुणों में मन को जोड़, यदि परमानन्द के लाभ करने की अभिलाषा कुछ भी दिल को हिला रही है।

(४४)

तस्यास्ते सत्य सवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्व देव मसि ॥

अर्थः—हे जगदीश्वर ! आपके पैदा किये हुए सत्य ऐश्वर्य युक्त जगत में जो वाणी और विजली हैं-इन दोनों की विद्या को जानता हुआ मैं उस यत्रं यानी कला को प्राप्त होऊं जो शुद्ध है, खुशी का वढाने वाला है । परमार्थ सुख को सिद्ध कराने वाला और सब विद्वानों को सुख देने वाला है।

व्याख्या:—जिस प्रकार जड़ जगत में विजली का प्रभाव है और इसी की कमी या ज्यादती. पवित्रता या अशुद्धि प्रकाश या अभाव पर पशु जीवन का निर्भर है। इसी प्रकार मानसिक जगत में वाणी का प्रभाव है-वाणी केवल मुख द्वारा ही नहीं उच्चारण की जाती किन्तु प्रत्येक संकल्प और विकल्प के बाह्य और आभ्यान्तर प्रकट होने को वाणी कहते है चाहे वह किसी भी तरह प्रकट क्यों न की जावे।

जिस प्रकार जड़ जगत में विजली की प्रवलशक्ति के चिन्ह हम पर्वतों की कंदराओं, नदियों और समुद्रों के किनारों और अनेक रूपों मे देखते हैं उसी प्रकार वाणी की महिमा का दिग्दर्शन मनुष्य समाज का इतिहास एक ओर और कुरुक्षेत्र की युद्धस्थली दूसरी ओर स्पष्ट रूप से करा रही है। जिसने विजली की शक्ति तथा वाणी की महिमा को भलि भांति जान लिया और इनसे उपयोग लेना प्रारंभ कर दिया उसके लिए स्वर्ग की सब सामग्री एकत्रित होनी प्रारंभ हो जाती हैं-और फिर सुख की वृद्धि होते हुए उसके लिए मुक्ति का मार्ग भी सुलभ हो जाता है।

बन्धुगण ! यदि इस लोक और परलोक के सुख की इच्छा आप के अन्दर काम कर रही है तो बिजली और वाणी को वशी भूत करने का शीघ्र यत्न करो !

वैदिक प्रेस, शामली।

ओ३म्

आर्य्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और समाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।